गांधीजी के जीवन के प्रेरणादायक प्रसंग

मेरा पेट भारत का पेट है

मेरा जीवन ही मेरा संदेश है

मेरा पेट भारत का पेट है

गांधीजी के जीवन के प्रेरणादायक प्रसंग

●

सम्पादक
विष्णु प्रभाकर

●

१९८१

सस्ता साहित्य मंडल,
श्रीकृष्ण जन्म-स्थान सेवा-संस्थान
का संयुक्त प्रकाशन

यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्य पर उपलब्ध किये गए कागज पर मुद्रित है.

प्रकाशक

यशपाल जैन | श्रीकृष्ण जन्म-स्थान
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल | सेवा-संस्थान
एन ७७, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली | मथुरा

●

तीसरी बार : १९८१

मूल्य : तीन रुपये

●

मुद्रक
अग्रवाल प्रिंटर्स
दिल्ली

प्रकाशकीय

महात्मा गांधी उन महापुरुषों में से थे, जिन्होंने मनुष्य के चरित्र को सबसे अधिक महत्व दिया। वह मानते थे कि समाज की बुनियादी इकाई मनुष्य है। यदि वह अपने को सुधार ले तो समाज अपने आप सुधर जायगा।

अपनी इस मान्यता को व्यक्त करने से पहले उन्होंने अपने जीवन को कसौटी पर कसा। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि ग्यारह व्रतों का पालन किया और दूसरों द्वारा किये जाने का आग्रह रखा। दैनिक जीवन की छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी बातों में वह बराबर जागरूक रहे और अपने सिद्धान्तों पर दृढ़तापूर्वक चलते रहे।

इस पुस्तक-माला की दस पुस्तकों में उनके जीवन के चुने हुए प्रसंग दिये गये हैं। ये प्रसंग इतने रोचक, शिक्षाप्रद तथा प्रेरणादायक हैं कि कोई भी पाठक उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

ये पुस्तकें गांधी जन्म-शताब्दी वर्ष में प्रकाशित हुई थीं। हाथों-हाथ बिक गयीं। कुछ के नये संस्करण हुए। कुछ के नहीं हो पाये। कागज और छपाई के दामों में असामान्य वृद्धि हो जाने के कारण उन्हें सस्ते मूल्य में देना असंभव हो गया। पर पुस्तकों की मांग निरन्तर बनी रही।

हमें हर्ष है कि अब यह पुस्तक-माला 'सस्ता साहित्य मंडल' तथा 'श्रीकृष्ण जन्म-स्थान सेवा-संस्थान' के संयुक्त प्रकाशन के रूप में निकल रही है। उसके प्रसंग कम नहीं किये गये हैं, पृष्ठ उतने ही रखे गये हैं, फिर भी मूल्य कम-से-कम रखा गया है।

हमें आशा ही नहीं, पूरा विश्वास है कि पाठक इस पूरी पुस्तक-माला को खरीदकर मनोयोगपूर्वक पढ़ेंगे और इससे अपने जीवन में भरपूर लाभ लेंगे।

—मंत्री

भूमिका

जो बात उपदेशों के बड़े-बड़े पोथे नहीं समझा सकते, वह उन उपदेशों में से किसी एक को भी जीवन में उतारने के समझ में आ जाती है। इसलिए गांधीजी कहते थे कि मेरा जीवन ही मेरा सन्देश है। उनके जीवन का यह सन्देश उनके दैनन्दिन जीवन की घटनाओं में प्रदर्शित और प्रकाशित होता है।

संसार के तिमिर का नाश करने के लिए मानव-इतिहास में जो व्यक्ति प्रकाश-पुंज की भांति आते हैं उनका सारा जीवन ही सत्य और ज्ञान से प्रकाशित रहता है। गांधीजी के जीवन में यह बात साफ दिखाई देती है। इस पुस्तक-माला में गांधीजी के जीवन के चुने हुए प्रसंगों का संकलन करने का प्रयास किया गया है। उनका प्रकाश काल के साथ मन्द नहीं पड़ता। वे क्षण में चिरन्तन के जीवन के किसी पहलू को प्रदर्शित करते हैं। उनकी प्रेरणा स्थानीय न होकर विश्वव्यापी है।

ये प्रसंग गांधीजी के जीवन से सम्बन्धित प्रायः सभी पुस्तकों के अध्ययन के बाद तैयार किये गए हैं। हर प्रसंग की प्रामाणिकता की पूरी तरह रक्षा की गई है। फिर भी वे अपने आपमें सम्पूर्ण और मौलिक हैं।

यह पुस्तक-माला अधिक-से-अधिक हाथों में पहुंचे तथा भारत की सभी भाषाओं में ही नहीं, वरन् संसार की अन्य भाषाओं में भी इसका अनुवाद हो, ऐसी अपेक्षा है। मैं आशा करता हूं कि यह पुस्तक-माला अपनी प्रभा से अनगिनत लोगों के जीवन को प्रेरित और प्रकाशित करेगी।

विषय-सूची

विचार जबतक ग्राचरण के रूप में प्रकट नहीं होता, वह कभी पूर्ण नहीं होता। ग्राचरण आदमी के विचार को मर्यादित करता है। जहां विचार और ग्राचार के बीच पूरा-पूरा मेल होता है, वहीं जीवन भी पूर्ण और स्वाभाविक बन जाता है।

मेरा पेट
भारत का
पेट है

: १ :

मेरा पेट भारत का पेट है

गांधीजी सोदपुर (बंगाल) में ठहरे थे। सभी प्रकार के व्यक्ति उनके दर्शन के लिए आते थे। भेंट-पूजा भी करते ही थे। कभी स्वाधीनता-आन्दोलन के लिए, कभी अस्पृश्यता-निवारण के लिए तो कभी खद्दर के प्रचार के लिए। उस दिन कलकत्ते के भागीरथ कानोड़िया के कुटुम्ब की कुछ महिलाएं उनका दर्शन करने के लिए आईं। सबसे पहले उन्होंने गांधीजी को प्रणाम किया। फिर जो कुछ रुपये-पैसे ले गई थीं, उनके चरणों में रख दिये। गांधीजी ने उन पर एक दृष्टि डाली और बोले, "बस इतना ही!"

सुपरिचित समाज-सेवी श्री सीताराम सेकसरिया उस समय वहीं बैठे थे। गांधीजी की बात सुनकर बोले, "बापू, देखिये तो सही, इतने रुपये कम हैं क्या? आपका पेट तो भरता ही नहीं।"

रुपये सचमुच काफी थे, लेकिन गांधीजी सहसा गम्भीर हो उठे। बोले, "तुम ठीक कहते हो। मेरा पेट नहीं भरता, लेकिन तुम्हीं बताओ, वह भरे भी कैसे? मेरा पेट तो भारत का पेट है।"

: २ :

मैं अपना कर्त्तव्य भूलकर यदि...

ट्रांसवाल की राजधानी प्रिटोरिया में सत्याग्रह-संग्राम समाप्त हो चुका था। सरकार के साथ समझौते की बातचीत चल रही थी। पहले दोनों ओर से शर्तों का आदान-प्रदान हुआ। उसके बाद एक कच्चा प्रारूप तैयार किया गया। अब केवल पक्का दस्तावेज बनाना शेष था। इसी बीच फिनिक्स से गांधीजी को एक तार मिला, "कस्तूरबा बहुत बीमार हैं। उनकी हालत बहुत खराब हो गई है। तुरन्त आइए।"

गांधीजी ने वह तार दीनबंधु एंड्रयूज को दे दिया। पढ़कर वह बोले, "हमें इसी वक्त यहां से चल देना चाहिए।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "यह कैसे हो सकता है? यहां समझौते की बातचीत चल रही है। चौबीस घण्टे के भीतर पत्रों के आदान-प्रदान हो जाने की आशा है। ऐसी हालत में किसी भी कारण से हो, मुझे यहां से चले जाने का अधिकार नहीं है। सारी कौम के लिए होने वाले समझौते को एक व्यक्ति के लिए खटाई में डाल देने का खतरा उठाने के लिए मैं तैयार नहीं। मैं अपना कर्तव्य भूलकर यदि एक दिन पहले पहुंच जाऊंगा तो वह बच जायगी, इसका क्या भरोसा? जिस काम को हाथ में लिया है, उसे पूरा करके ही मैं यहां से जा सकता हूं।"

गांधीजी के इस निश्चय को देखकर एंड्रयूज बहुत चिन्तित हुए। उन्होंने तुरन्त जनरल स्मट्स से टेलीफोन पर बातचीत

की। कहा, "हम एक धर्म-संकट में पड़ गए हैं। फिनिक्स से तार आया है कि श्रीमती गांधी बहुत बीमार हैं। गांधीजी को तुरन्त बुलाया है।"

जनरल स्मट्स ने जवाब दिया, "गांधीजी बड़ी खुशी से जा सकते हैं। हमारा समझौता अब निश्चित है।"

एंड्रयूज ने गांधीजी के संकल्प की चर्चा करते हुए जनरल स्मट्स से कहा, "शाम होनेवाली है, फिर भी मैं गांधीजी का पत्र आपके पास ला रहा हूं। आप अपना पत्र तैयार करवाकर तुरन्त मुझे दे दें तो अच्छा हो।"

जनरल स्मट्स बोले, "देर तो बहुत हो जायगी। मुझे और भी आवश्यक कार्य करने हैं, फिर भी आप गांधीजी का पत्र लेकर आइए। मैं अपना पत्र तैयार करवाता हूं।"

ऐसा ही किया गया। जनरल स्मट्स का पत्र लेकर जब एंड्रयूज वापस लौटे तो रात के दस बज रहे थे। काम निबट जाने के बाद ही गांधीजी फिनिक्स के लिए रवाना हुए।

: ३ :

यरवदा पैक्ट की शर्तें ठीक तरह पूरी हों

गांधीजी दक्षिण भारत के प्रवास पर थे। एक सप्ताह के लिए उन्होंने पूर्ण विश्राम लिया। यात्रा स्थगित कर दी गई, लेकिन प्रतिनिधि मण्डलों से मिलने में कोई बाधा नहीं थी। हरिजनों के दो प्रतिनिधि मण्डल उनसे मिले। पहला मण्डल पहाड़ी हरि-

जनों का था। उन्हें इस आन्दोलन से बड़ा सन्तोष था। सवर्ण हिन्दुओं के विरुद्ध भी उन्हें कोई विशेष शिकायत नहीं थी, लेकिन अपनी आर्थिक उन्नति के लिए वे अवश्य चिन्तित थे। इसके विपरीत जो दूसरा प्रतिनिधि मण्डल कोयम्बटूर से आया था, उसके पास एक आवेदन-पत्र था। वह सवर्ण हिन्दुओं के विरुद्ध एक अच्छा खासा अभियोग-पत्र था। उन्होंने यहां तक कहा, "हमें दुख होता है कि आप जैसे प्रतापी पुरुष का जन्म हमारे आदि हिन्दू कुल में हमारे कष्टों को अनुभव करने के लिए नहीं हुआ।"

गांधीजी ने उन्हें सांत्वना दी। एक घण्टे तक उनसे बातें करते रहे और जब उन्हीं में से एक सज्जन ने यह याद दिलाया कि हमारा नियत समय हो चुका है तो वह बोले, "जबतक मैं अपनी संपूर्ण आत्मा नहीं उंडेल देता, इन भाइयों को लौटा नहीं सकता। यरवदा पैक्ट की शर्तें ठीक तरह पूरी हों, इसके लिए आप मुझे जामिन समझते हैं। इसीलिए तो मैं यरवदा मन्दिर की वह शान्ति छोड़कर सारे भारत का भ्रमण करने के लिए निकला हूं।"

इस लम्बी बातचीत के अन्त में प्रतिनिधिमण्डल की एक वृद्ध महिला ने गांधीजी को दो नारंगियां भेंट कीं। बड़ी प्रसन्नता से उन्होंने इस स्नेह-भेंट को अंगीकार करते हुए कहा, "भाई, इन नारंगियों में तुम्हारा सम्पूर्ण स्नेह और आशीर्वाद भरा हुआ है, फिर भला मैं इन्हें क्यों न खाऊंगा!"

क्या तू मुझे अच्छी तरह देख सकती है ?

सन् १९३४। उड़ीसा-यात्रा। एक दिन गांधीजी अपने दल के सहित शाम को यात्रा कर रहे थे। सारे रास्ते में उत्सुक ग्रामवासी पंक्ति बांधकर खड़े थे और उनके आने की राह देख रहे थे। एक स्थान पर तो बड़ी भारी भीड़ थी। लोग सारी सड़क पर फैल गये थे। उन्हींके बीच एक बुढ़िया, जिसके सारे बाल सफेद हो गये थे और आंखों की ज्योति धुंधली पड़ गई थी, इधर-उधर दौड़ रही थी और कह रही थी, "वे कहां हैं ? मैं उन्हें अवश्य देखूंगी।"

वह इतनी उत्तेजित थी कि सम्भवतः दर्शन से वंचित रह जाती, परन्तु तभी गांधीजी ने उसे देख लिया। वह रुक गये और उसे पुकारा। उत्कण्ठा से भरी हुई वह बुढ़िया उनके पास आई और अपनी धुंधली आंखों को उनके ऊपर गड़ा दिया। गांधीजी हँस पड़े और बोले, "क्यों ?"

फिर उसकी ठुड्डी पर हाथ लगाते हुए पूछा, "क्या तू मुझे अच्छी तरह देख सकती है ?"

बुढ़िया के आनन्द की कोई सीमा नहीं थी। विह्वल होकर उसने अपने दोनों हाथ उनके गले में डाल दिये और उनकी छाती पर सिर रखकर आनन्द में आत्मविस्मृत-सी हो गई।

धीरे-धीरे गांधीजी ने अपने को छुड़ाया और सपने में खोई

वह बुढ़िया फिर उस भीड़ में समा गई। पर उसके जीर्ण-शीर्ण मुख पर आनन्द का वह प्रकाश अब भी चमक रहा था।

: ५ :

सोने के गहने तुम्हें शोभा नहीं देते

बिहार भूकम्प के समय गांधीजी मुजफ्फरपुर गये थे और वहां के सुप्रसिद्ध राजनेता श्री महेशप्रसाद सिंह के घर पर ठहरे थे।

स्नान के अनन्तर भोजन का समय आया। श्री सिंह की लड़की सब चीजें ला-लाकर परस रही थी कि गांधीजी बोले, "अपनी माताजी को भेजो।"

बकरी का दूध लेकर श्री सिंह की पत्नी आईं। हाथों में सोने की चूड़ियां और अंगूठी, गले में भी सोने का एक गहना था। दूध लेकर गांधीजी बोले, "ये सोने के गहने तुम्हें शोभा नहीं देते! तुम बिना गहनों के ही अच्छी लगती हो। ये हमें दे दो। जो लोग कष्ट में हैं, उनकी मदद करूंगा।"

श्री सिंह की पत्नी ने तुरन्त सारे गहने उतारकर उनके सामने रख दिये। गांधीजी बहुत हंसे और बोले, "देखो, मैंने तुम्हारा आतिथ्य स्वीकार करके तुमको गहनों से वंचित कर दिया है।"

श्री सिंह की पत्नी ने कहा, "यह मेरा सौभाग्य है कि आप हमारे घर अतिथि बने। गहने देकर मैं बहुत प्रसन्न हूं।"

तीन बजे गांधीजी को स्टेशन जाना था। देखते-देखते अपार भीड़ वहां इकट्ठी हो गई। स्टेशन तक मनुष्य नजर आते थे। इस अपार भीड़ में श्री सिंह का परिवार गांधीजी से बिछुड़ गया। लेकिन वह जैसे ही गाड़ी में बैठे उन्होंने अपने साथियों से कहा, "अरे, महेशबाबू को तो बुलाओ। मैं उनकी पत्नी को धन्यवाद देना चाहता हूं। बड़े प्रेम से उन्होंने मुझे खिलाया-पिलाया है।"

श्री सिंह की लड़की की प्यार से पीठ ठोककर तथा उनकी पत्नी को आशीर्वाद देकर ही वह वहां से गये।

: ६ :

इसी तरह गांवों की सेवा करोगे ?

श्री घनश्यामदास बिड़ला ने दिल्ली से लगभग पांच मील दूर चर्मालय और हरिजन विद्यार्थियों के एक छात्रालय के लिए जमीन खरीदी थी। वह जमीन उन्होंने हरिजन सेवक संघ को दान कर दी थी। वह चाहते थे कि उस जमीन पर सबसे पहले गांधीजी स्वयं एक रात रहकर 'शुभ मुहूर्त' करें। गांधीजी ने उनकी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। वहां एक झोंपड़ी बनाई गई। उसे देख कर गांधीजी बोले, "यह झोंपड़ी है कि महल ? इसे बनाने के लिए हजारों रुपये खर्च हुए होंगे ? तुम यह भूल गये कि तुम हरिजनों के प्रतिनिधि हो। तुमने अपने को बिड़ला का प्रतिनिधि मान लिया। कच्ची दीवारों पर घासफूंस का छप्पर छाया होता तो गरीबों के झोंपड़ों के साथ इसका ठीक मेल बैठता।"

किसी तरह वह दिन बीता। शाम को सहसा गांधीजी ने देखा कि उनके सामने पीतल की थूकदानी रखी हुई है। गांव के वातावरण में यह थूकदानी! गांधीजी ने तुरंत ब्रजकृष्ण चांदीवाला से पूछा, "यह थूकदानी किसने मंगवाई है?"

ब्रजकृष्णजी ने उत्तर दिया, "बापू, मैंने मंगवाई है। मेरा विचार था कि मेरे घर पर कोई थूकदानी होगी, वह वहां से ले आयगा अथवा किसी से मांग लायगा, लेकिन खरीदने वाले भाई ने गलती की।"

गांधीजी बोले, "क्या तुमको ऐसा नहीं लगा कि थूकदानी कहीं नहीं मिली तो वह भाई खरीद कर भेजेगा?"

ब्रजकृष्णजी ने कहा, "लगा तो था, लेकिन मैं समझता था कि चार-पांच आनेवाली खरीदकर भेजेगा।"

गांधीजी बोले, "चार आने की आती तो तुम्हें कोई ऐतराज नहीं होता। यही न? इसी तरह गांवों की सेवा करोगे? यहां गांव में मिट्टी का बड़ा शकोरा पैसे दो पैसे का मिल जाता है। वह तो मंगवा सकते थे। खैर, यह वापस करो और मिट्टी का बर्तन मंगवाओ।"

फिर रात हुई। गांधीजी के सोने के लिए खटिया लाई गई, परंतु उन्होंने उसपर सोने से इंकार कर दिया। बोले, "चटाई पर बिछी हुई गादी ही मेरे लिए काफी होगी।"

यह सुनकर सब लोग घबरा उठे। एक व्यक्ति ने धीरे-से कहा, "बापू गरीब-से-गरीब आदमी भी खटिया तो काम में लेता ही है।"

गांधीजी बोले, "मैं भी जानता हूं, परन्तु क्या हम इसी बात

में गरीब गांव वालों की बराबरी करेंगे? बराबरी करनी है तो भोजन और कपड़ों में करो। उनके जैसा खाओ, उनके जैसा पहनो। अगर हम चारपाई छोड़ सकें तो कह सकेंगे कि हमने कुछ तो त्याग किया। वैसा पूरा ग्रामीण बनने में तो अनेक जन्म लगेंगे।"

: ७ :

मुझे ही यह करने दो

मैरित्सबर्ग जेल में अपने शरीर की समस्त मांस-मज्जा को दक्षिण अफ्रीका की सरकार के नाम बलि चढ़ाकर जब कस्तूरबा फीनिक्स लौटीं तो उन्हें रोग-शैया पर पड़ जाना पड़ा। धीरे-धीरे वह बीमारी इतनी गम्भीर हो गई कि चारों ओर चिन्ता छा गई। वहां कोई वैद्य-डाक्टर था नहीं। बा की हालत चिन्ताजनक देखकर किसी तरह डरबन से एक डाक्टर बुलाया गया।

गांधीजी उस समय ट्रांसवाल गये हुए थे। वहां से लौटकर उन्होंने बा की सेवा का भार स्वयं संभाल लिया। इस अवसर पर देश का, सत्याग्रह का, आश्रम का और सरकार के साथ समझौते की बातचीत का कोई भी काम वह करते हों, लेकिन बा की सेवा में कोई त्रुटि नहीं आने देते थे। वैसे तो श्री छगनलाल गांधी की पत्नी सारा समय बा की चारपाई के पास ही बिताती थीं। हरेक छोटा-मोटा काम करने का आग्रह भी रखती थीं। परन्तु जब गांधीजी वहां मौजूद रहते, तब उनकी एक न चलने देते थे। उनके हाथ से काम ले लेते थे और कहते थे, "मुझे ही यह

करने दो। बा को संतोष कैसे दिया जाय, इसका पता मुझे ज्यादा है। इस समय तो मैंने समय निकाल लिया है, जब मैं न आ सकूं तब तुम करना।"

वह दिन भर थूकदान और मलमूत्र के पात्र उठाकर बाहर फेंकने ले जाते थे और धोकर वापस लाते थे। अगर कोई उनकी सहायता करने को आगे बढ़ता तो रोक देते थे। पीने के लिए पानी गर्म करना होता या ऐसा ही कोई और काम होता तो भी वह अपने ही हाथों से करते थे। पानी में जरा-सा कूड़ा दीख जाय, बर्तनों पर कहीं कलौंस या चिकनाई का अंश हो तो वह दुबारा बड़ी सावधानी से सफाई करते। सारा समय चारपाई के पास खड़े रहते। न कुर्सी या स्टूल डालकर बैठते, न उनके मुख पर कभी कोई थकावट या उदासी ही दिखाई देती।

: ८ :

मजाक में भी झूठ का व्यवहार नहीं करना चाहिए

सन् १९२६ में एक नवयुवक स्नातक साबरमती आश्रम में रहने के लिए आया था। उसे बच्चों से बहुत प्रेम था। इसलिए शीघ्र ही वह उनमें लोकप्रिय हो गया।

एक दिन वह एक आठ वर्ष की बालिका को खेल-तमाशा दिखा रहा था। उसके हाथ में एक नीबू था और वह बच्ची उस नीबू को पाना चाहती थी। उछलती-कूदती, हँसकर चीखती,

लेकिन वह उस युवक के हाथ से नीबू ले नहीं पा रही थी। थक गई तो हारकर रोने लगी। वह नीबू आश्रम के एक मरीज के लिए था। युवक चक्कर में पड़ गया। यदि वह नीबू को उसे दे दे तो उस मरीज का क्या होगा?

अचानक उसने नाटकीय ढंग से हाथ घुमाया। कहा, "मैंने नीबू नदी में फेंक दिया।"

लेकिन वह नीबू उसने चालाकी से अपनी जेब में रख लिया था। बच्ची ने पूछा, "अब नदी में उस नीबू का क्या होगा? क्या मैं उसे ढूंढ़ सकती हूं?"

युवक ने उत्तर दिया, "नहीं, वह नीबू डूब गया।"

दोनों में फिर दोस्ती हो गई। साथ-साथ ही वे दोनों रोगी की कुटी तक गये। मार्ग में उस युवक ने अपनी जेब से रूमाल निकाला तो उसके साथ वह नीबू भी निकलकर नीचे गिर पड़ा। उसे देखकर बच्ची उसकी ओर झपटी नहीं, बल्कि क्रोध में भरकर उसने युवक की ओर देखा। बोली, "तो तुम मुझसे झूठ बोले थे! जेब में नीबू छिपाकर मुझसे कहा कि डूब गया। मैं बापूजी से कहूंगी, तुम झूठे हो।"

और सचमुच उसने गांधीजी से सबकुछ कह दिया। शाम की प्रार्थना के बाद गांधीजी ने उस युवक को बुलाया। युवक ने जो कुछ हुआ था, वह सबकुछ कह सुनाया। गांधीजी समझ गये कि वह महज मजाक था। फिर भी उन्होंने कहा, "तुम्हें इस बारे में सजग रहना चाहिए। बच्चों के साथ कभी मजाक में भी झूठ का व्यवहार नहीं करना चाहिए। हँसी-मजाक में शुरू हुई बात आगे चलकर आदत भी बन सकती है।"

आनन्द तो मन की वस्तु है

यरवदा जेल में एक बार केनेडा से मिस गुलचेन लम्स्डेन नाम की एक महिला का पत्र आया। उसने लिखा था, "सर हेनरी लौरेन्स, हमारे यहां आकर रहे थे। उन्होंने आपके संबंध में बताया था कि वह आपसे पूना में मिले थे। आपको एकान्त में रखा गया था। आपके कमरे के सामने बगीचा था और आप गिबन का 'रोमन साम्राज्य का उदय और पतन' पुस्तक पढ़ रहे थे। उन्होंने यह भी कहा कि आप बहुत आनन्द में थे। मैंने कहा कि यह तो परियों की कहानी-सी लगती है। सर हेनरी बोले, 'तुम लिखकर पुछवालो कि दस वर्ष पुरानी मुलाकात का यह हाल सच है या नहीं। हां, यदि गांधी की स्मरण-शक्ति मन्द हो गई तो दूसरी बात है, क्योंकि उनकी उम्र ६२ वर्ष की हो गई है।' मुझे तो भरोसा है कि आपकी याददाश्त कमजोर नहीं पड़ेगी। इसलिए आपसे पूछती हूं कि इस मामले में सर हेनरी लारेन्स की बात कहां तक सच है ?"

गांधीजी ने इस पत्र का उत्तर लिखवाया। महादेव देसाई बोले, "इस पत्र का असर पड़ता है कि आप इस आदमी की सचाई पर शक करते हैं।"

गांधीजी बोले, "तो बदल दो, क्योंकि हमें ऐसी शंका नहीं है।"

सरदार वल्लभभाई पटेल वहीं बैठे थे। बोले, "यह आदमी

वहां प्रचार कर रहा होगा। इस औरत को लिखिये कि यहां कोई बगीचा नहीं, कैदी हैं। अमुक साल में मैं यहां था तब अमुक पुस्तक पढ़ता था और कात रहा था और स्मरण-शक्ति घटने का डर तो सर हेनरी को हो सकता है, क्योंकि उनकी उम्र मुझसे बड़ी है।"

महादेव देसाई बोले, "ऐसा जवाब तो बर्नाड शॉ दे सकते हैं। इस जवाब में कुशलता की छाप नहीं पड़नी चाहिए।"

वल्लभभाई भड़क उठे, लेकिन बाद में गांधीजी ने जो इस पत्र का जो उत्तर लिखवाया वह इस प्रकार था :

"आपके पत्र के लिए धन्यवाद। सर हेनरी सन् १९२२ या २३ में इस जेल में आये थे। उस समय की मुलाकात मुझे अच्छी तरह याद है। उनका खयाल सच्चा है कि उस समय मेरा वक्त खासतौर पर गिबन के 'रोमन साम्राज्य का उदय और पतन' पुस्तक के पढ़ने में और चरखा कातने में बीतता था। यह भी सच है कि उन्होंने मुझे आनन्द में देखा था। लेकिन उस समय यहां सुन्दर बगीचा नहीं था। आज भी नहीं है। उस समय यहां कुछ ऊंचे-ऊंचे पेड़ जरूर थे और आज भी हैं और कोठरियां तो जैसी बगैर किसी तरह की सुविधा के हिन्दुस्तान की साधारण जेलों में होती हैं, वैसी ही सलाखों वाली हैं। कोठरियों के तौर पर वे काफी हवा और रोशनी वाली हैं। आसपास के वर्णन के मामले में तो मेरी याद मुझे धोखा नहीं दे सकती, क्योंकि यह लिखते वक्त मैं उसी जगह बैठा हूं, जहां मुझे हेनरी लारेन्स ने दस बरस पहले देखा था। इसलिए उनके किये हुए वर्णन पर से आप पर परियों की कहानी का असर पड़ा हो तो जरूर वह वर्णन

गलत है और आनन्द तो मन की वस्तु है। मैं कितने ही वर्षों से कठिन जीवन का आदी हो गया हूं। इसलिए आसपास की सुविधा-असुविधाओं का मेरे मन के साथ संबंध नहीं रहता।

: १० :

मुझे यह भाषा बिलकुल पसन्द नहीं

भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के इतिहास में 'यंग इण्डिया' का बहुत महत्व रहा। लेकिन गांधीजी के हाथ में आने से पहले वह 'बाम्बे क्रानिकल' के छापेखाने में छपता था और उसके घोषित संपादक थे जमनादास द्वारिकादास। वास्तव में उसके संपादन का भार श्री आर० के० प्रभू पर था। एक दिन वह अपने एक मित्र के साथ गांधीजी से मिलने गये। गांधीजी मणि-भवन बम्बई में ठहरे थे। अपना परिचय देकर 'यंग इण्डिया' के पिछले अंक की प्रति उन्होंने गांधीजी को दी। गांधीजी ने उसके सम्पादकीय स्तम्भों पर दृष्टि डाली और एक विशेष लेख की ओर इंगित करते हुए पूछा, "यह किसने लिखा है ?"

आर० के० प्रभू ने कहा, "यह लेख मैंने लिखा है।"

गांधीजी ने फिर दूसरे लेख की ओर इशारा किया, "यह किसने लिखा है ?"

आर० के० प्रभू के साथ एक साथी थे। उन्होंने कहा, "यह लेख मेरा लिखा हुआ है।"

गांधीजी एक क्षण रुके। बोले, "मुझे पहला लेख पसन्द है,

मगर दूसरा बिलकुल नहीं। पहले में आपने जो कुछ कहा है सो सीधे ढंग से कह दिया है, जबकि दूसरे लेख के लेखक ने तरह-तरह के व्यंग्यपूर्ण आक्षेपों का आश्रय लिया है। ऐसी बातें कही हैं जो सचमुच वह नहीं कहना चाहता।"

आर० के० प्रभू के साथी की ओर मुड़कर वह बोले, "आपने लिखा है, "हमें भय है।" मुझे यह भाषा बिलकुल पसन्द नहीं। यहां आप सचमुच पाठक को यह विश्वास नहीं कराना चाहते कि आपको भय है। आपका ठीक इससे उलटा अर्थ है। क्या यह बात नहीं है? गोल-मोल बातें मत कहिए। कठोर बात को नरम शब्दों में कहना या चुटकियां लेना आदि मत कीजिये, बल्कि सीधे साफ ढंग से कहिए।"

: ११ :

ये आदमी तो बनें

सन् १९२४ का वर्ष। हिन्दू-मुस्लिम दंगों से त्रस्त, गांधीजी दिल्ली में मौलाना मोहम्मद अली के मकान पर ठहरे हुए थे। तीसरे पहर का समय था। अलीगढ़ से आये हुए एक भाई ने पं० सुन्दरलाल से कहा, "क्या गांधीजी के दर्शन हो सकते हैं?"

वह उस समय अपने कमरे में अकेले बैठे हुए थे। दरवाजा बन्द था। पं० सुन्दरलाल और उनके साथी ने अन्दर जाने के लिए दरवाजा खोला ही था कि पंडितजी की निगाह गांधीजी के चेहरे पर पड़ी। लगा, वह गहरी चिन्ता में डूबे हुए हैं। उलटे पांव लौट

पड़े । उसी क्षण गांधीजी ने आवाज देकर वापस बुला लिया। दोनों सामने जाकर बैठ गये । देश में होनेवाले हिन्दू-मुस्लिम दंगों के समाचारों से उनकी आत्मा को तीव्र वेदना हो रही थी। उसी प्रश्न को उठाते हुए पं० सुन्दरलाल ने कहा, "बापू, क्या आप समझते हैं कि इस तरह आप हिन्दू और मुसलमानों को एक कर लेंगे ?"

गांधीजी ने पूछा, "तुम्हारा क्या मतलब है ?"

पंडितजी ने कहा, "क्या हिन्दू हिन्दू और मुसलमान मुसलमान रहकर एक हो सकते हैं ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "मैं समझ गया, तुम्हारा क्या मतलब है । तुम जुहू में भी तो यही कह रहे थे । मुझसे क्या पूछते हो ? मैं तो यह कहने को तैयार हूं कि वे सब-के-सब नास्तिक हो जायं तो अच्छा है । इनके न मानने से कोई खुदा थोड़ा ही मिट जायगा, पर ये आदमी तो बनें । लेकिन मेरी कौन सुनता है ? कबीर कह गये, नानक कह गये, मेरी कौन सुने ? और तुम क्या चीज हो ? दुनिया तो अपने ही रास्ते पर चलती है ।"

यह कहकर गांधीजी मौन हो गये, जैसे फिर गहरी चिन्ता में डूब गये हों। दोनों बन्धु उठकर बाहर आ गये । मौलाना मोहम्मद अली और हकीम अजमलखां साहब वहीं थे । पण्डितजी ने उनसे कहा, "ऐसा लगता है जैसे गांधीजी कोई गहरी बात सोच रहे हैं और कोई खास कदम उठानेवाले हैं ।"

अगले दिन ही गांधीजी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए अपने सुप्रसिद्ध २१ दिन के उपवास की घोषणा कर दी ।

वह तो आजादी का दीवाना है

१९२८ में कलकत्ता में नेशनल कन्वेंशन का अधिवेशन हुआ था। सभापति थे पं० मोतीलाल नेहरू। इस कन्वेंशन ने जो प्रस्ताव स्वीकार किया था, उसमें भारत का लक्ष्य 'औपनिवेशिक स्वराज्य' निर्धारित किया गया था। जब यह प्रस्ताव कांग्रेस महासभा में स्वीकृति के लिए उपस्थित किया गया तब युवक दल के दो नेताओं की ओर से उस पर संशोधन उपस्थित करने की सूचना मिली। संशोधन था 'कांग्रेस का ध्येय भारत की पूर्ण स्वाधीनता है", और ये दो नेता थे पं० जवाहरलाल नेहरू और श्री सुभाषचन्द्र बोस।

महात्माजी कांग्रेस से अलग होकर साबरमती आश्रम में विश्राम कर रहे थे, परन्तु संकट के समय उनकी पुकार हमेशा की तरह इस बार भी हुई। वह ठीक समय पर कलकत्ता आ पहुंचे। ध्येय संबंधी प्रस्ताव उन्होंने ही उपस्थित किया। इस पर बोलते हुए उन्होंने प्रारम्भ में औपनिवेशिक स्वराज्य का अर्थ समझाया और उसके गुण बतलाये। अन्त में संशोधन की चर्चा की। उन्होंने संशोधन के संबंध में उतना नहीं कहा, जितना उसके प्रस्तावक के संबंध में। बोले, "जवाहरलाल कहता है, मुझे औपनिवेशिक स्वराज्य पसन्द नहीं। मैं पूरी आजादी चाहता हूं। वह चाहेगा भी क्यों नहीं ? वह तो आजादी का दीवाना है। उसके पिता भी तो आजादी के दीवाने हैं। वह तो अपने

दीवानेपन में सूख गया है। कमला बीमार है, उसे उसकी चिन्ता नहीं। अपनी भी परवा नहीं। देश की चिन्ता में घुला जाता है।..."

वह यहांतक पहुंचे थे कि लोगों ने देखा पं० जवाहरलाल नेहरू अपने स्थान से उठकर सर झुकाये हुए पण्डाल से बाहर चले गये। अनेक दर्शकों ने उस समय कहा, "बुड्ढे ने प्रशंसा करके जवाहरलाल को मार डाला।"

उनका कहना ठीक था। संशोधन उपस्थित करने के समय जब जवाहरलालजी की तलाश हुई तो वह वहां नहीं थे। केवल हरे रंग की खादी की टोपी और सफेद कुर्ता-धोती पहने सुभाष-बाबू खड़े थे।

: १३ :

मां की ममता बच्चे को स्वावलम्बन नहीं सीखने देती

सौ० शारदादेवी वर्मा महिलाश्रम में अध्यापिका का काम करती थीं। वह अपने लड़के के स्वास्थ्य के बारे में बहुत चिन्तित थी। एक दिन उसे लेकर वह गांधीजी के पास पहुंचीं। उस समय वह कुछ लिख रहे थे। चारों तरफ कागज बिखरे हुए थे। कुछ पर गोल पत्थर की बटियां रखी हुई थीं। पास ही ताड़ का एक पंखा था।

गांधीजी ने शारदादेवी के लड़के की ओर देखा और पंखा

उठाने का इशारा किया। लड़का गांधीजी का आशय समझ गया। उसने पंखा उठाया और गांधीजी को झलने लगा।

कुछ क्षण बीत गये। ठण्डी हवा लगी तो गांधीजी को झपकी-सी आने लगी। वह वैसे ही पीठ के बल गद्दी पर टिक गये। यह देखकर शारदादेवी ने लड़के के हाथ से पंखा ले लिया और स्वयं झलने लगी। दो-तीन मिनट बीते होंगे कि गांधीजी जग गये। शारदादेवी की तरफ देखा। मुस्कराए और बोले, "हां, मां है न! मां की ममता ने बेटे को सेवा करने से रोक लिया। छोटा है न। फिर कमजोर है। पंखा झलने से थक जायगा।"

शारदादेवी ने उत्तर दिया, "नहीं बापू, पंखा झलते-झलते यह भूल से कहीं आपको मार न दे, इस डर से मैंने इसके हाथ से पंखा ले लिया है।"

गांधीजी बोले, "नहीं, दलील झूठी है। मां की ममता बच्चे को स्वावलम्बन नहीं सीखने देती।"

: १४ :

सत्याग्रही को ईश्वर पर भरोसा करना चाहिए

नागपुर में कुछ लोगों ने व्यक्तिगत सत्याग्रह किया था, मगर सरकार ने उन्हें गिरफ्तार नहीं किया। गांधीजी का आदेश था—"जो सत्याग्रही गिरफ्तार न हों, वे गांव-गांव प्रचार करते हुए दिल्ली की तरफ बढ़ते चलें।"

लेकिन नागपुर के ये लोग दिल्ली के स्थान पर पहुंच गये सेवाग्राम। वे गांधीजी का आशीर्वाद और दिल्ली जाने का निश्चित आदेश प्राप्त करना चाहते थे।

उस समय गांधीजी स्नान करने के लिए जा रहे थे। जत्थे से उनकी भेंट हुई। उन्हें देखकर पूछा, "आप लोग इधर कैसे आये ? दिल्ली जाना चाहिए था और वह भी अलग-अलग, गांव-गांव में प्रचार करते हुए। आप जनसेवा के लिए निकले हैं। इसलिए जनता की सहायता पर निर्भर रहना चाहिए। कांग्रेस कमेटी के पास जो पैसा है, वह सत्याग्रहियों के ऊपर खर्च करने के लिए नहीं है। उन्हें अपने घर का पैसा भी खर्च नहीं करना चाहिए। गांववालों से जो मिले, उसी पर अपनी गुजर करनी चाहिए।"

उन लोगों ने कहा, "दिल्ली जाने की बात तो हमने सुनी है, पर यहां हम सबकुछ जानने और आपका आशीर्वाद लेने के लिए आये हैं।"

गांधीजी ने पूछा, "आज के भोजन की व्यवस्था हुई ?"

उत्तर मिला, "अभी तो नहीं हुई, मगर कुछ-न-कुछ हो जायगी।"

गांधीजी बोले, "यहां आप लोगों को भोजन नहीं मिलेगा।"

यह कहकर वह स्नान करने के लिए चले गये। भोजन का समय हो गया था। इन लोगों को भूख सता रही थी और विदा लेकर वहां से चले जाना चाहते थे, तभी देखते हैं कि गांधीजी स्नान करके भोजनशाला की ओर जा रहे हैं। घण्टी बजी, सब आश्रमवासी भोजनशाला की ओर चले। तभी गांधीजी के आदेश

से इन लोगों को बुलाने के लिए एक व्यक्ति वहां आया।

वे लोग भोजनशाला में पहुंचे। गांधीजी ने बड़े प्रेम से उन्हें अपने पास बिठाकर सात्विक भोजन कराया। उबली भाजी, कच्चे टमाटर, मूली, पालक का सलाद, चोकर मिले आटे की छोटी-छोटी रोटियां और गुड़।

भोजन करते समय गांधीजी सच्चे सत्याग्रही के लक्षण बताते रहे। बोले, "आप लोग एक-एक करके गांवों में घूमते हुए दिल्ली जाइए। अपने जीवन को सात्विक बनाइये। गांव वाले आपसे शिक्षा लेंगे।"

उस जत्थे में कई महिलाएं भी थीं। उनमें एक थी श्रीमती शान्तिदेवी शर्मा। उन्होंने पूछा, "स्त्रियों का अकेला गांव-गांव पैदल घूमना कठिन है। बीमारी में उनके साथ कोई अवश्य रहना चाहिए।"

गांधीजी बोले, "सत्याग्रही को ईश्वर पर भरोसा करना चाहिए। वही उसकी मदद करेंगे। ईश्वर तुम्हारे हर वक्त साथ है। तुम्हारे सामने एक पवित्र ध्येय है, ऐसा समझ कर चलो। थोड़ा-थोड़ा चलो और अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखो।"

: १५ :

तुमने भोजन किया ?

मई, १९४२ में श्री प्रभुदयाल अग्निहोत्री गांधीजी से मिलने के लिए वर्धा पहुंचे। उनके पास श्री किशोरलाल मशरूवाला

के नाम बाबा राघवदास का कोई संदेश था।

अग्निहोत्री महादेवभाई की अनुमति लेकर अन्दर गये। प्रणाम किया और बैठ गये। गांधीजी ने तबतक भोजन नहीं किया था। वह भारत मंत्री मि० एमरी के किसी वक्तव्य का उत्तर लिख रहे थे। इतने में उनकी दृष्टि अग्निहोत्री पर पड़ी। नाम-ग्राम पूछा। अग्निहोत्री ने मशरूवालाजी के नाम बाबा राघवदास के सन्देश की बात कह सुनाई। मुस्कराकर गांधीजी ने पूछा, "तो आप किशोरलालभाई से मिल लिये ?"

अग्निहोत्री ने उत्तर दिया, "जी नहीं, मैं तो उन्हें जानता नहीं। आपतक ही यह सन्देश पहुंचा दूं, यही मुझे अधिक उपयुक्त जान पड़ा।"

गांधीजी बोले, "अच्छा, अगर मैं तुम्हारी मेहनत बचा दूं तो ? देखो, इस कमरे में जो सबसे हट्टे-कट्टे और स्वस्थ व्यक्ति दिखाई दे रहे हैं, वह किशोरलालभाई हैं।"

अग्निहोत्री ने किशोरलालभाई को देखा। बाबा राघवदास का सन्देश उनको सुनाया, लेकिन उत्तर दिया गांधीजी ने। फिर बोले, "अब और क्या पूछना है ?"

अग्निहोत्री ने कहा, "आन्दोलन के सम्बन्ध में जो चर्चा चल रही है वह यदि सत्य है तो सरकार आप और दूसरे नेताओं को बहुत दिन बाहर नहीं रहने देगी। ऐसी स्थिति में जन-साधारण की बात तो अलग, स्वयं हम लोग क्या करेंगे ?"

महादेवभाई ने कहा, "ऐसी स्थिति आये तो आप 'हरिजन' की फाइलों को उलट-पलटकर देखियेगा। उनसे स्पष्ट निर्देश मिल जायगा।"

चर्चा काफी देर तक होती रही। तभी एक आश्रमवासिनी महिला गांधीजी का भोजन लेकर वहां आई। गांधीजी जैसे चौंक पड़े। अग्निहोत्री से पूछा, "तुमने भोजन किया?"

अग्निहोत्री ने उत्तर दिया, "नहीं, बापू मैं वर्धा जाकर कर लूंगा। स्टेशन के पास एक धर्मशाला में ठहरा हूं।"

यह सुनकर गांधीजी बोले, "तब तो तुम यहीं खा लो, वर्धा में खाना ठीक नहीं मिलेगा।"

उन्होंने इशारा किया। एक स्वयंसेवक तुरन्त अग्निहोत्री को भोजनशाला में ले गया। वह विलम्ब से पहुंचे थे, परन्तु भोजन अभी शेष था। वहां स्वादिष्ट, पौष्टिक और सात्विक भोजन करके वह बहुत प्रसन्न हुए। अंधेरा हो चला था। वह वर्धा की ओर लौट पड़े। गांधीजी ने पूछा, "कैसे जाओगे? सवारी है?"

अग्निहोत्री ने उत्तर दिया, "नहीं बापू, मैं चला जाऊंगा।"

लेकिन गांधीजी की चिन्ता कैसे दूर हो? सड़क पर कीचड़, घना अंधेरा, सेवाग्राम में सवारी की कोई व्यवस्था नहीं, लेकिन सौभाग्य की बात कि अमृतलाल नानावटी का तांगा खड़ा था। गांधीजी जैसे चिन्तामुक्त हो गये। लेकिन जबतक वे लोग तांगे पर बैठ नहीं गये, तबतक वह भीतर नहीं गये।

मनुष्य का मूल्य उसकी बनायी संस्था पर से लगाना चाहिए

गांधीजी यरवदा जेल में थे। करीमनगर की मिस मेरी बार उनसे मिलने के लिए आई। वह देहात में जाना चाहती थीं। इसी सम्बन्ध में उन्होंने शान्तिनिकेतन के बारे में कोई शंका उठायी। गांधीजी ने जवाब दिया, "शान्तिनिकेतन हिन्दुस्तान में एक अनन्य स्थान है। शायद इस पृथ्वी पर भी वह अनन्य हो। हां, वहां कुछ चीजें ऐसी हैं, जो मुझे पसन्द नहीं। मगर किसी को देहात का काम देखने की इच्छा हो तो और जगहों के साथ-साथ शांतिनिकेतन देखने की मैं उसे खास सलाह देता हूं। वहां के लोग ईमानदारी से कोशिश कर रहे हैं।"

इसके बाद आश्रम में जाने की सलाह देते हुए बोले, "आश्रम को देखकर मेरी कीमत का अन्दाज लगाना। मुझमें झूठी नम्रता नहीं। मैं जैसा हूं, उससे दूसरा ही चित्र खींचने वाले मित्र भी हैं। मगर मनुष्य के मूल्य का अन्दाज उसकी बनायी हुई संस्था पर से लगाना चाहिए। जैसे कवि ठाकुर का मूल्य शान्तिनिकेतन पर से लगाया जा सकता है वैसे ही मेरी कीमत आश्रम पर से लगायी जा सकती है। मनुष्य को यह बता देना चाहिए कि उसके इरादे कोई क्षण-क्षण में आने-जाने वाले विचार नहीं हैं, परन्तु स्थायी रूप से अमल में लाने के होते हैं। मैं अहिंसा के बारे में जो लिखता हूं, उसे अमल में लाकर

दिखाना है।"

फिर जरायम पेशा लोगों की बात करते हुए कहा, "आश्रम की कमजोरी का यह विचित्र कारण है। इनका धंधा चोरी करना ही है। अब हमें इनके बीच में रहने का निश्चय कर लेना चाहिए। पुलिस से हम शिकायत नहीं कर सकते। बल प्रयोग भी नहीं कर सकते। उनका कोई विशेष विरोध नहीं होता, इसलिए वे ज्यादा ढीठ होते जा रहे हैं। इसका उपाय जरूर है, मगर उस पर अमल करने की हममें शक्ति नहीं है। वह उपाय है कि हम कोई भी माल-असबाब न रखें और जो हो, उसको जो भी ले जाना चाहे, ले जाने दें। अहिंसा का पालन करना है तो इस सवाल का जवाब तुरन्त ढूंढ़ना चाहिए।"

मिस बार बोलीं, "कोई कठिनाई न हो तब तो इस पृथ्वी पर सत्ययुग आ जाय।"

गांधीजी ने कहा, "यह तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु मरुभूमि में हरियाली हो सकती है और आश्रम वैसा बनने की आशा रख सकता है।"

: १७ :

यह लड़की आश्रम की शोभा बढ़ा रही है

आनन्दी नाम की एक लड़की साबरमती आश्रम में रहती थी। गांधीजी से मिलने वह यरवदा जेल में आई। उसे पास बिठाकर वह उसके स्वास्थ्य का हाल पूछते रहे। कुछ दिन से वह

अस्वस्थ चल रही थी। उसने कहा, "दाहिनी बाज़ू दुखती है। कल तमाम दिन बहुत दुखती रही। थक कर सो गई। शाम को जब दर्द कम हुआ तब खाना खाया।"

गांधीजी ने पूछा, "आज दुखती है?"

उसने उत्तर दिया, "उतनी नहीं दुखती।"

विनोद करते हुए गांधीजी बोले, "अगर तुझे अपेंडिक्स होगा तो काटना पड़ेगा। मर जाय तो कुछ चिन्ता नहीं। नहीं मरी तो रोग चला जायगा।"

गांधीजी ने तुरन्त काकासाहब कालेलकर से कहा, "इसे आज ही फाटक और गोखले डाक्टर के पास ले जाइये और तुरन्त जांच करवाइये। आपरेशन की सलाह दें तो मेरी तरफ से कहिए कि वे ही कर दें।"

डाक्टर फाटक ने उस लड़की को देखा। कहा, "कुछ दर्द है, मगर कोई खास बात नहीं।"

लेकिन डा० गोखले ने तुरन्त आपरेशन करने की सलाह दी और वह स्वयं ही आपरेशन करने के लिए तैयार हो गये। उन्होंने गांधीजी का आपरेशन होते हुए देखा था और वह यह भी जानते थे कि एक पैसा नहीं मिलेगा। बोले, "मेरा यहां से तबादला हो गया है। कल जाना है, मगर आज इतना काम करके जाऊंगा। शाम को ही आपरेशन करूंगा।"

काकासाहब गांधीजी के पास आये। उन्होंने डाक्टर की सलाह मान ली, लेकिन प्रश्न उठा कि कोई आपत्ति करे या लड़की की बुआ घबराये तो क्या हो? गांधीजी ने उत्तर दिया, "कह देना कि इसका बाप और मां मैं हूं और मेरी सलाह है कि

आपरेशन करा डाला जाय।"

आपरेशन हुआ और सफल हुआ। लड़की ने बड़ी हिम्मत दिखाई। रात को पास में कोई नहीं था। नर्स तक नहीं। पानी मांगने पर कोई देने वाला नहीं, पर वह घबराई नहीं। सवेरे उसने काकासाहब से कहा, "नर्स बेचारी एक होती है और बीमार अनेक। वह कितनों को संभाल सकती है!"

गांधीजी सुनकर बहुत खुश हुए। बोले, "तब तो यह लड़की आश्रम की शोभा बढ़ा रही है।"

: १८ :

जब तुम स्वराज प्राप्त कर लोगी...

सुप्रसिद्ध डांडी-यात्रा पर जाते समय गांधीजी ने जब साबरमती आश्रम छोड़ा था तब कहा था कि मैं अब स्वराज्य लेकर ही इस आश्रम में आऊंगा। लेकिन जून, १९३५ में जब वह खान अब्दुल गफ्फार खां से मिलने के लिए साबरमती जेल गये तो हरिजन-आश्रम में हरिजन बालिकाओं को देखने भी गये। बहुत देर तक वह उनसे विनोद करते रहे। अध्यापिकाओं की चर्चा करते हुए उन्होंने पूछा, "अमुक अध्यापिका तुम्हें क्या सिखाती है?"

उत्तर मिला, "बुनना।"

इसी प्रकार कोई अध्यापिका कातना सिखाती थी, कोई गाना। लेकिन जब गांधीजी ने एक और अध्यापिका का नाम

लिया, पूछा, "वह तुम्हें क्या सिखाती है," तो उत्तर मिला, "नाश्ता।"

इस पर गांधीजी ने कहा, "तो तुम्हारी सब से अच्छी अध्यापिका 'नाश्ता' का मीठा पाठ देने वाली ही होगी।"

प्रसन्न होकर बच्चियां बोलीं, "जरूर-जरूर।"

गांधीजी ने कहा, "अच्छा, मुझे अब यह बतलाओ कि तुम लोगों में नटखट लड़की कौन है?"

तुरन्त ही कई नाम उनके सामने आये। उन्होंने फिर पूछा, "तुममें से कोई झूठ भी बोलती है?"

उत्तर मिला, "हां-हां, हम बोलते हैं, जब काम से जी चुराते हैं।"

गांधीजी ने कहा, "नाम बताओ।"

एक लड़की ने हँसते हुए उत्तर दिया, "मैं हूं।"

गांधीजी बोले, "पर यह तो बुरी बात है। है न? तुम्हें ऐसी कोशिश करनी चाहिए, जिससे कभी झूठ न बोलना पड़े।"

वह लड़की बोली, "कोशिश तो करती हूं, पर मैं हमेशा चूक जाती हूं। झूठ मुंह से निकल ही जाता है। मालूम नहीं कि मैं अपने प्रयत्न में कैसे सफल हो सकूंगी।"

गांधीजी बोले, "मैं बतलाऊं? अच्छा, तुम नित्य सवेरे उठकर राम का नाम लो और यह कहो, 'हे प्रभु, मेरी सहायता कर कि मैं झूठ न बोलूं' और नित्य शाम को जब सोने के लिए जाने लगो तब कहो, 'हे प्रभु, सत्य बोलने में इतनी बार मैंने आज भूल की है। मेरी यही प्रार्थना है कि सत्य बोलने में तू मेरी सहायता कर।' अब तुम मेरे कहे अनुसार चलोगी न?"

सब बालिकाओं ने एक स्वर में कहा, "जी हां।"

गांधीजी बोले, "यह अच्छी बात है। अपने वचन पर दृढ़ रहना। अच्छा, अब हमारा खेल खत्म हुआ, मैं विदा लेता हूं। क्यों, जाऊं न अब?"

कई लड़कियों ने कहा, "नहीं-नहीं।"

"क्यों, क्या तुम्हें मुझसे कुछ पूछना है? तो फिर पूछो।"

लड़कियों ने पूछा, "आप यह बतलाइये कि आप यहां हमारे साथ क्यों नहीं ठहरे?"

गांधीजी बोले, "क्योंकि तुमने मुझे निमंत्रण नहीं दिया और बुधभाई ने दिया।"

लड़कियां बोलीं, "निमन्त्रण तो आपको हमारा भी मिलता, पर आप हमारे साथ यहां ठहरेंगे नहीं। बतलाइये, इसका क्या कारण है?"

गांधीजी बोले, "जब तुम स्वराज्य प्राप्त कर लोगी तब मैं यहां आकर तुम्हारे साथ ठहरूंगा।"

: १९ :

इतना करके देखिए तो फर्क पड़ेगा

सन् १९३२ में गांधीजी यरवदा जेल में थे। तब भी उनके पास नाना प्रकार के अनेक पत्र आया करते थे। रात-रात बैठकर वह उनके उत्तर लिखवाते थे। एक दिन एक सरकारी पेंशनर का पत्र आया। उम्र उसकी सत्तर वर्ष की हो गई थी। दमे का

रोग उसे बहुत परेशान करता था। उसने लिखा था, "आपने अनेक प्रयोग किये हैं और कुदरती उपायों से रोग अच्छे किये हैं, तब क्या मुझे कुछ नहीं बतायंगे ?"

महादेव देसाई ने कहा, "ऐसे पत्रों का कहां तक जवाब देते रहें ?"

गांधीजी बोले, "अच्छा।"

यह कहकर उन्होंने पत्र फाड़ डाला, लेकिन तभी सरदार वल्लभभाई पटेल, जो पास ही बैठे थे, बोले, "अरे, लिखो न कि उपवास कर, भाजी खा, काशीफल खा, सोडा पी।"

गांधीजी खिलखिलाकर हँस पड़े और महादेवभाई से बोले, "महादेव, यह कागज उठा लो। हमें उसे जवाब देना है।"

और सचमुच उन्होंने उस पत्र का उत्तर लिखवाया। उसका सार था, "आपको डा० मुन्थू को लिखना चाहिए। हमारा अशास्त्रीय किन्तु अनुभव का ज्ञान तो यह बताता है कि आपको तीन उपवास करने चाहिए और फिर दूध और नारंगी के रस के साथ उपवास छोड़ना चाहिए। इतना करके देखिए तो फर्क पड़ेगा।"

उसके बाद वह अपने दक्षिण अफ्रीका के अनुभव सुनाने लगे कि किस प्रकार इन्होंने कुदरती इलाज से अनेक व्यक्तियों का दमा दूर किया था।

बीड़ी न पीने में ही तुम्हारा भला है

धार्मिक, आर्थिक और आरोग्य की दृष्टि से आहार में सुधार और प्रयोग करने का गांधीजी को बड़ा शौक रहा है। इन प्रयोगों के साथ दवाओं की मदद के बिना कुदरती उपचार से रोगियों को रोग-मुक्त करने के प्रयोग भी वह करते रहते थे। जिन दिनों वह दक्षिण अफ्रीका में वकालत करते थे, उन दिनों मुवक्किलों के साथ उनका परिवार जैसा संबंध था। सुख-दुःख में वे सब उन्हें अपना साझीदार बनाते थे। जो उनके आरोग्य विषयक प्रयोगों से परिचित थे वे इस विषय में भी मदद लेते थे। कभी-कभी ऐसे लोग टालस्टाय फार्म पर भी आ धमकते थे। इनमें से एक था लुटावन नाम का एक बूढ़ा, जो उत्तर हिन्दुस्तान से गिरमिटिया मजदूर बनकर दक्षिण अफ्रीका गया था। उसकी उम्र सत्तर वर्ष से ऊपर रही होगी। बरसों से दमा और खांसी का रोगी था। वैद्यों और डाक्टरों का उसे काफी अनुभव हो चुका था। गांधीजी ने उससे कहा, "अगर तुम मेरी सारी शर्तों का पालन करके फार्म पर रहने को तैयार हो तो मैं तुम पर अपने प्रयोग आज़माऊंगा।"

उस बूढ़े ने गांधीजी की सारी शर्तें कबूल कीं। उसे तम्बाकू का बड़ा व्यसन था। उसने उसे भी छोड़ना स्वीकार कर लिया।

अब गांधीजी के उपचार शुरू हुए। उपवास, कटि-स्नान,

धूप में बैठना, आदि-आदि। खुराक में उसे थोड़ा भात, थोड़ा-सा जैतून का तेल, शहद, कभी-कभी खीर, मीठी नारंगी या अंगूर और भुने हुए गेहूं की कॉफ़ी दी जाती थी। नमक और मसाले बिलकुल बन्द कर दिये थे।

जिस मकान में गांधीजी सोते थे उसीके अन्दर के हिस्से में लुटावन का बिस्तर था। प्रयोग करते हुए एक सप्ताह बीत गया। उसके शरीर में तेज आया। दमा कम हुआ। खांसी भी कम हुई, लेकिन रात के समय ये दोनों रोग उसे बहुत परेशान करते थे। गांधीजी को सन्देह हुआ कि कहीं यह छिपाकर तम्बाकू तो नहीं पीता। उससे पूछा तो उसने इंकार कर दिया।

एक-दो दिन और बीत गये, परन्तु उसे कोई लाभ नहीं हुआ। तब गांधीजी ने गुप्त रूप से जांच करने का निश्चय किया। उनके पास टार्च थी। एक रात वह जागते पड़े रहे। बरामदे में उनका बिस्तर था और भीतर लुटावन का। आधी रात को उसे खांसी आयी। उसने दियासलाई जलाकर बीड़ी पीना शुरू किया। गांधीजी तो देख ही रहे थे। वह धीरे-से उसके बिस्तर के पास गये और टार्च का बटन दबा दिया। लुटावन एकाएक घबरा गया। उसने बीड़ी बुझा दी और गांधीजी के पैर पकड़कर बोला, "मैंने बड़ा गुनाह किया है। अब मैं कभी तम्बाकू नहीं पीऊंगा। आपको मैंने धोखा दिया है। आप मुझे माफ कर दीजिये।"

कहते-कहते उसका गला भर आया। गांधीजी ने उसे सांत्वना दी। बोले, "बीड़ी न पीने में ही तुम्हारा भला है। मेरे हिसाब से तो तुम्हारी खांसी मिट जानी चाहिए थी, लेकिन जब नहीं मिटी तो मुझे शंका हुई कि तुम छिपे-छिपे बीड़ी पीते होगे।"

उसके बाद लुटावन ने बीड़ी पीनी छोड़ दी। उसके साथ ही उसका रोग भी कम होने लगा। एक महीने के भीतर दोनों ही रोग दूर हो गये। तेजस्वी और ताकतवर होकर ही उसने गांधीजी से विदा ली।

: २१ :

मैं धरती-पुत्र हूं

सन् १६२७ में सेठ जमनालाल बजाज साबरमती आये थे। उन्होंने देखा कि गांधीजी को जितनी शान्ति और आराम की आवश्यकता है, उतना मिलता नहीं है। इसलिए वह शान्ति के साथ अपना काम कर सकें और समय-असमय पर मिलने आने-वाले दर्शकों के उपद्रव से बचे रहें, इस विचार से आश्रम के अहाते में ही उन्होंने उनके लिए एक छोटा-सा एकतल्ला मकान बनाने की इच्छा प्रकट की। गांधीजी ने इसके लिए उन्हें अपनी स्वीकृति दे दी। और लोगों ने भी इस योजना का स्वागत किया, किन्तु दूसरे ही दिन शाम की प्रार्थना के बाद गांधीजी ने घोषित किया कि उक्त योजना के लिए असावधानी-वश अपनी सम्मति प्रदान करने के क्षण से वह बेचैनी अनुभव कर रहे हैं। वह बोले, "मैं तो धरती पर का जीव हूं। धरती-पुत्र हूं। इसके अतिरिक्त एक किसान और जुलाहे के लिए या एक लोकसेवक के लिए भी एक तल्ले पर जाकर रहना और इस प्रकार धरती-माता से अपना नाता तोड़ लेना नितान्त अशोभनीय है। इसलिए

मैंने अपना पूर्वोक्त निर्णय बदल दिया है। मैं आश्रम के उस छोटे-से कमरे से, जिसका मैं आजतक उपयोग करता रहा हूं, संतुष्ट हूं।"

और वह मकान नहीं बना।

: २२ :

जो मैं कहता हूं, वह करो

नोआखाली-प्रवास में एक गांव से दूसरे गांव घूमते-घूमते गांधीजी देवीपुर पहुंचे। वहां के लोगों ने बड़े ठाठ-बाट से उनका स्वागत किया। इसमें उनके लगभग डेढ़-सौ, दो-सौ रुपये खर्च हो गये। प्रतिदिन गांधीजी जिस गांव में जाते थे उस गांव की स्त्रियां तिलक करके उनका स्वागत करती थीं। बहुत हुआ तो नारियल के पत्तों से कुछ सजावट भी कर ली जाती थी। इसमें गांधीजी को कोई ऐतराज नहीं होता था, क्योंकि इसमें पैसे खर्च नहीं होते थे, केवल मेहनत ही करनी पड़ती थी। लेकिन यहां देवीपुर में लोगों ने विशेष रूप से चांदपुर से फूल, जरी, रेशम की पट्टियां, रंग-बिरंगे कागज आदि मंगवाये और गांव को सजाया। घी और तेल के दीये जलाकर दीप-माला भी की।

यह सब देखकर गांधीजी सहसा गम्भीर हो गये। फिर मनु से कहा, "पता लगाओ, यहां के कार्यकर्ता कौन हैं और आबादी कितनी है?"

मनु ने पता लगाया कि गांव में तीन-सौ हिन्दू और डेढ़-सौ

मुसलमान रहते हैं। हिन्दुओं में ब्राह्मण, कायस्थ और शूद्र सभी हैं।

गांधीजी ने वहां के कार्यकर्ता को बुलाया और पूछा, "इस सजावट के लिए पैसा कहां से मिला ?"

कार्यकर्ता ने उत्तर दिया, "आपके चरण हमारी भूमि पर कहां बार-बार पड़ते हैं ? इसलिए प्रत्येक हिन्दू ने आठ-आठ आने पैसे दिये हैं। जो दे सकता था, उसने अधिक भी दिये हैं। इस तरह लगभग तीन-सौ रुपये हमने इकट्ठे किये और ये सब चीजें खरीदीं।"

यह सुनकर गांधीजी को बहुत दुःख हुआ। दर्द-भरे स्वर में वह बोले, "यह सजावट जो तुमने की है, वह क्षण-भर में कुम्हला जायगी। मुझे लगता है, तुम सब मुझे धोखा दे रहे हो। मेरे नाम पर यह ठाठ-बाट करके तुम इस झगड़े को और बढ़ावा दे रहे हो। क्या तुम नहीं जानते कि मैं इस समय आग की लपलपाती हुई ज्वालाओं से घिरा हुआ हूं। जितने फूलों के हार आप लोगों ने पहनाए हैं उनके बजाय यदि सूत के हार मुझे पहनाते तो रंज न होता, क्योंकि उनसे सजावट भी होती है और बाद में कपड़े भी बन सकते हैं।

"अगर तुम्हें मुझसे प्रेम है तो मैं जो कहता हूं, वह करो। लेकिन यह मेरी समझ में नहीं आता कि ऐसे कत्ले आम के बाद इतना व्यर्थ खर्च करने का खयाल तुम्हें कैसे आया ! तुम कांग्रेस के नामी कार्यकर्ता हो। कहते हो, तुमने मेरी किताबें पढ़ी हैं। एम० ए० तक पढ़ाई की है। जेल भी हो आये हो। खादी की छोटी-सी धोती पहनते हो, फिर इस सजावट में विलायती मिलों

का रेशम और रिबन कैसे लगाया ? तुमसे मुझे अपने सब कार्यकर्ताओं का अन्दाज होता है। जो कार्यकर्ता एक दिन जनता के सेवक थे, उन्हें यदि पदों पर बिठायंगे तो ये फूल हार पहनने-पहनाने के लालच में कहीं गिरने न लगें। मैं आज छाती ठोककर नहीं कह सकता कि कोई भी मेरे किसी भी कार्यकर्ता की परीक्षा ले सकता है, वह सादा-का-सादा ही मिलेगा। अच्छी बात है, आज की इस कहानी से मेरी आंखें खुल गईं। मैं आप लोगों को दोष नहीं देता। आप तो जैसे थे वैसे ही दिखाई दिये, लेकिन इससे ईश्वर मुझे इस बात का भान कराता है कि मैं कहां हूं।"...

बेचारे कार्यकर्ता को क्या पता था कि गांधीजी को इतना दुख होगा। उन्होंने तुरन्त सब सजावट उतार दी। जो वस्तुएं काम में ली जा सकती थीं, काम में ले ली गईं। गांधीजी के आदेशानुसार हार में इस्तेमाल किये गए तागों का बंडल बना लिया गया। वह बंडल काफी बड़ा था। उसे लोगों को सीने के काम में लेने के लिए दे दिया। उसके बाद सभी लोग हाथ कते सूत के हारों से ही गांधीजी का स्वागत करते थे। लगभग पांच थानों जितना सूत इकट्ठा हुआ। उसका कपड़ा बनवाकर गरीबों में बंटवा दिया गया।

अब श्रद्धापूर्वक किसके साथ परामर्श करूंगा

३१ जुलाई १९२० की वह भयानक रात अभी समाप्त भी नहीं हुई थी कि स्वराज्य मंत्र के जन्म-दाता लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का स्वर्गवास हो गया। गांधीजी तब बम्बई में ही थे। फोन पर यह दुखद समाचार पाकर वह बहुत गम्भीर हो उठे। सारी रात बिस्तर पर बैठे रहे। दीया भी वैसे ही जलता रहा उसी की ओर ताकते हुए वह सोचते रहे। बहुत रात गये महादेवभाई की आंख खुलीं। उन्होंने देखा कि गांधीजी वैसे ही बैठे हुए हैं। वह उनके पास गये। उन्हें देखते ही गांधीजी बोल उठे, "अब अगर मैं किसी उलझन में पड़ूंगा तो श्रद्धापूर्वक किसके साथ परामर्श करूंगा? और जब कभी सारे महाराष्ट्र की मदद की जरूरत आ पड़ेगी तो किससे कहूंगा?"

एक क्षण वह रुके, फिर बोले, "आजतक में स्वराज्य का कार्य करता रहा। लेकिन स्वराज्य का नाम जहां तक हो सका, टालता रहा। लेकिन अब तो लोकमान्य का चलाया हुआ स्वराज्य का अखंड जाप आगे चलाना होगा। इस बहादुर वीर के हाथ की स्वराज्य की ध्वजा एक क्षण के लिए भी नीचे नहीं झुकनी चाहिए।"

दूसरे दिन वह लोकमान्य की अन्तिम यात्रा में शामिल हुए। अर्थी को कन्धा दिया, लेकिन ऐसे गम्भीर प्रसंगों पर शान्ति

और गाम्भीर्य का जैसा वायुमण्डल रहना चाहिए वैसा न देखकर उनके मन को बड़ा आघात पहुंचा। वह दुःखी हुए। लेकिन बाद में इसी बात को उन्होंने एक नयी दृष्टि से देखा। अहमदाबाद लौटकर प्रार्थना के बाद उन्होंने इस प्रसंग की चर्चा की और कहा, "जो जनता वहां इकट्ठी हुई थी वह शोक करने के लिए थोड़े ही आयी थी ! वह तो अपने राष्ट्र-नेता का सम्मान करने आई थी। ऐसी जनता से हम शोक के गाम्भीर्य की अपेक्षा ही क्यों करें !"

: २४ :

जुलाब की जरूरत नहीं

पंडित तोताराम सनाढ्य गांधीजी के पास साबरमती आश्रम में रहते थे। उनकी पत्नी श्रीमती गंगाबहन भी उनके साथ ही थीं। एक बार वह बीमार हो गईं। जैसाकि सदा होता था, गांधीजी ही उनकी देखभाल करते थे।

उस दिन सोमवार था। गांधीजो मौन-व्रत धारण किये हुए थे। वह गंगाबहन को देखने के लिए गये, लेकिन शायद तभी कोई आवश्यक कार्य आ गया और वह चिकित्सा सम्बन्धी सूचनायें बिना दिये ही वापस लौट आये।

रात को लगभग दो बजे उनकी नींद खुली। याद आया कि आज गंगाबहन को चिकित्सा-सम्बन्धी सूचना तो दे ही नहीं सके। बस उसी वक्त उन्होंने एक छोटी-सी पुर्जी पर पेंसिल से

लिखा—"जुलाब की जरूरत नहीं है। आज भी दूध देना चाहता हूं। नारंगी और दाक्ष का रस लेती रहना। पानी पी सकें, इतना पीवें। कटि-स्नान लेवें और बर्फ की मालिश भी करें। नमक और सोडे का पानी भी लेवें। और पेट पर आज भी दिन में मिट्टी की पुलटिस लगावें। अभी चार ग्रेन कुनैन, नींबू और सोडे के साथ लेवें। दो बजकर पांच मिनट।"

उस पुर्जी को उन्होंने आश्रम की एक बहन के हाथ उसी समय पंडित तोताराम सनाढ्य के पास भिजवा दिया।

: २५ :

मैं रामजी का नाम रटते-रटते मरूं

दिल्ली की अमानुषिक घटनाओं की बातें सुन-सुनकर गांधीजी का मन अत्यन्त बेचैन हो उठता। जिनको वह अपने स्नेही-जन और अपना साथी मानते थे उनके व्यवहार से भी उन्हें थोड़ा असंतोष था। पाकिस्तान से लाखों की संख्या में भारत आये हुए निराश्रितों की विकट समस्या उन्हें परेशान कर रही थी। २९ जनवरी (१९४८) की रात को वह थककर चूर हो गये। मनु उनके सिर में तेल की मालिश कर रही थी। मालिश कराते-कराते वह कहने लगे, "मेरे सिर में चक्कर आ रहे हैं। मैं सोच रहा हूं कि मैं कहां खड़ा हूं, क्या कर रहा हूं! आज की इस अशांति में शान्ति की स्थापना कैसे की जा सकती है?"

इसके बाद खिन्न स्वर में वह भजन की यह कड़ी बोल

उठे—"है बहारे बाग़ दुनिया चन्द रोज़ ।"

उस समय कौन जानता था कि चन्द रोज की यह बात अब केवल चन्द घंटों की ही रह गयी है ? थोड़ी ही देर बाद उनके सबसे छोटे पुत्र देवदास गांधी वहां आये। कुछ देर दोनों बातें करते रहे। बातें करते-करते उन्हें जोर की खांसी आ गई। मनु ने उनसे पेनीसिलिन की गोली लेने का आग्रह किया, परन्तु वह क्यों मानने लगे ! राम नाम में उनकी अटल श्रद्धा थी। अत्यन्त गम्भीर और करुण स्वर में बोले, "इस यज्ञ में इन सब लोगों के बीच अकेली तू ही मेरे साथ भाग ले रही है। आजतक मैंने ऐसी शिक्षा किसी दूसरे को नहीं दी जैसे तेरी मां बनकर तुझे दी है। अगर मैं किसी रोग से मरूं, एक छोटी-सी फुंसी की वजह से भी मरूं तो तू दुनिया से पुकार-पुकारकर कहना कि मैं दंभी और ढोंगी महात्मा था। भले ही ऐसी बातें कहने के कारण लोग तुझे गाली दें या मार भी डालें। मैं जहां भी रहूंगा, वहां मेरी आत्मा को शांति मिलेगी। एक हफ्ते पहले जैसे मुझ पर बम फेंककर मारने का प्रयत्न किया गया, उसी तरह कोई आदमी मुझे गोली से मारने आये और उस समय अगर मैं बहादुरी से गोलियां छाती पर झेल लूं और मेरे मुंह से आह तक न निकले, बल्कि रामजी का नाम रटते-रटते मरूं तो ही तू दुनिया से कहना कि मैं सच्चा महात्मा था।"

क्यों, कैसी है कल्पना ?

एक बार हिन्दुस्तानी प्रचार सभा की बैठक गांधीजी की कुटिया में हो रही थी। वहां मेज-कुर्सियां नहीं थीं। मिट्टी से लिपी हुई स्वच्छ धरती पर चटाई बिछाकर सब लोग बैठे थे।

बैठक के बीच में ही गांधीजी अपने स्थान से उठे। उन्होंने एक कुर्सी मंगवायी। स्वयं जाकर एक छोटी-सी तिपाई उठा लाये और उस पर उन्होंने मिट्टी का एक शकोरा लाकर रखा। सब लोग अचरज से यह दृश्य देख रहे थे। कोई इसका अर्थ नहीं जानता था। एक व्यक्ति ने उनसे पूछा, "बापूजी, आप यह क्या कर रहे हैं?"

गांधीजी हंस पड़े। बोले, "मौलाना साहब आनेवाले हैं न! उन्हें धरती पर बैठने की आदत नहीं। उनके लिए ही यह प्रबन्ध कर रहा हूं।"

उस व्यक्ति ने फिर पूछा, "लेकिन यह मिट्टी का शकोरा किसलिए है?"

गांधीजी ने अपनी मुक्त हँसी बखेरते हुए उत्तर दिया, "ओह! इसके बारे में पूछते हैं! यह है राखदानी! क्यों, कैसी है कल्पना!"

क्यों, तुम्हारी आंखें खराब तो नहीं हैं ?

एक बार आश्रम के विद्यालय के विद्यार्थियों ने गांधीजी को व्यायाम, खेल और अभिनय दिखाने का निश्चय किया। मार्तण्ड उपाध्याय ने बांस के सहारे ऊंची कूद का खेल दिखाया। अपनी उम्र के लड़कों में पोल जम्प में उसका दूसरा या तीसरा नम्बर रहा करता था, लेकिन गांधीजी के सामने जब खेल का प्रदर्शन हुआ तो तीन बार अवसर दिये जाने पर भी जितनी ऊंचाई से वह कूद जाया करता था उस दिन उतनी ऊंचाई पर से नहीं कूद सका। या तो डोरी के इधर ही कूदता या फिर डोरी पांव में उलझ जाती। जब खेल का प्रदर्शन समाप्त हुआ तब गांधीजी ने बालक मार्तण्ड को बुलाकर पूछा, "क्यों, तुम्हारी आंखें खराब तो नहीं हैं ?"

मार्तण्ड ने उत्तर दिया, "लगता तो नहीं है, पर इस बार खेल में डोरी साफ दिखाई नहीं देती थी। इसी कारण मैं सफल नहीं हो सका। यह सब शायद धूप के कारण हुआ।"

गांधीजी बोले, "नहीं, कल जाकर अपनी आंखों की जांच कराओ। मैं जमनालालजी से कह दूंगा। वह सब व्यवस्था करा देंगे।"

दूसरे दिन जमनालालजी ने मार्तण्ड को अहमदाबाद के एक आंख के डाक्टर के पास भेज दिया। पहली ही जांच में पता लगा कि आंखों में दोष है। दोनों का नम्बर—२ निकला।

डाक्टर ने चश्मा बनाया और आदेश दिया कि उसे हमेशा लगाना चाहिए। बापू को जब इन बातों का पता लगा तो वह बोले, "जब तुम बांस लेकर डोरी लांघने का प्रयास करते थे तो तुम मिच-मिची आंखों से देखते थे। फिर भी डोरी के या तो पहले कूदते थे या डोरी के ऊपर। इससे मुझे लगा कि तुम्हारी आंख खराब होनी चाहिए।"

: २८ :

दो हजार वर्ष की अवधि आपको अधिक मालूम होती है ?

गोलमेज परिषद् के समाप्त हो जाने के बाद गांधीजी सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी मनीषी रोम्यां रोलां से मिलने के लिए पेरिस होते हुए स्विटज़रलैण्ड पहुंचे। वह एक सप्ताह तक उनके वीलन्यव के पास के घर पर रहे। इसी अवधि में लोज़ान और जेनेवा में उनके व्याख्यानों का भी आयोजन किया गया। किसी एक भाषण के पश्चात एक वृद्ध सज्जन ने उनसे पूछा, "क्या उस उद्देश्य को दोहराते समय, जोकि आज से दो हज़ार वर्ष पूर्व ईसा मसीह संसार को दे गये थे और जिसकी असफलता की साक्षी इतिहास दे रहा है, आप निराशा अनुभव नहीं करते ?"

अपनी स्वाभाविक मुस्कराहट के साथ गांधीजी ने प्रतिप्रश्न किया, "कितने वर्ष बोले आप ?"

वह वृद्ध सज्जन साम्यवादी थे। उत्तर दिया, "मैंने कहा

कि विगत बीस शताब्दियों से व्यर्थ ही इन बातों का प्रचार किया जा रहा है।"

गांधीजी सहज भाव से बोले, "तो क्या बुराई का बदला भलाई से चुकाने जैसी दुरूह बात सीखने के लिए, दो हजार वर्ष की अवधि आपको बहुत अधिक मालूम होती है?"

: २६ :

मेरा आपरेशन करती तो...

जिस समय गांधीजी आगाखाँ महल में नजरबन्द थे, कुछ कैदी उनके पास काम करने के लिए रहते थे। ऐसे ही एक कैदी की आंख के पास एक फोड़ा था। आंख सूज कर बन्द हो गई थी। उसमें चीरा लगाने का निश्चय किया गया। प्यारेलाल को भय था कि चीरे के नाम से वह डर जायगा। शायद बेहोश भी हो जाय। इसलिए उन्होंने कहा, "इसे लिटा कर चीरा लगाना चाहिए।"

गांधीजी बोले, "नहीं, ये लोग तो बहादुर होते हैं। तुम्हें जैसी सुविधा हो वैसे ही करो।"

डा० सुशीला नैयर ने उसे बिठा कर ही चीरा लगाया। गाँधीजी बड़ी दिलचस्पी के साथ सारा समय उसके पास ही खड़े रहे और जो मदद दे सकते थे देते रहे। जब पट्टी बांधने का अवसर आया तो पाया कि पट्टी कुछ छोटी है। उसके साथ दूसरी पट्टी जोड़नी पड़ी। यह सब देखकर गांधीजी बोले, "मेरा आपरेशन

करती तो तू कभी छोटी पट्टी लेकर काम शुरू न करती। पहले से ही पट्टी बड़ी रखनी चाहिए थी।"

: ३० :

उनका नंगा रहना क्या नग्न सत्य को प्रकट नहीं करता ?

सन् १९२१ में गांधीजी और मौलाना मोहम्मद अली दक्षिण की यात्रा कर रहे थे। जब वे वाल्टेर पहुंचे तो भारत सरकार ने मौलाना मोहम्मद अली को गिरफ्तार कर लिया। बेगम मोहम्मद अली भी उस यात्रा में उनके साथ थीं। उन्होंने बड़े साहस के साथ इस विछोह को सहा और मद्रास में होने वाली सभाओं में वह गांधीजी के साथ जाती रहीं। गांधीजी इस बात से वहुत प्रभावित हुए।

इसके बाद उन्हें मद्रास में छोड़कर ही वह मदुरा चले गये। उनके डिब्बे में और भी बहुत से यात्री थे, लेकिन उनमें से लगभग सभी उन दिनों होने वाली इन घटनाओं से परिचित नहीं थे। वास्तव में उन्हें इन बातों की तनिक भी चिन्ता नहीं थी। उन सभी ने विदेशी वस्त्र पहने हुए थे। गांधीजी ने उनमें से कुछ के साथ वातचीत करने का प्रयत्न किया और आग्रह किया कि वे खादी पहनें। उन्होंने सिर हिलाते हुए उत्तर दिया, "हम इतने गरीब हैं कि खादी नहीं खरीद सकते। वह बहुत मंहगी है।"

गांधीजी उनकी बात का अर्थ समझ गये। उनके मन में गहन मन्थन मचने लगा। सोचने लगे—"मैं कुर्ता, टोपी और पूरी धोती पहने हुए हूं। जबकि करोड़ों लोग चार इंच चौड़ी और चार फुट लम्बी लंगोटी के सिवा और कुछ नहीं पहन सकते। मजबूर होकर उन्हें नंगे रहना पड़ता है। उसका यह नंगा रहना क्या नग्न सत्य को प्रकट नहीं करता ? अब यदि मैं सभ्यता की सीमा में रहते हुए अपने पहनावे में जितना कपड़ा कम कर सकता हूं उतना न करूं तो मैं इन लोगों को प्रभावशाली उत्तर कैसे दे सकता हूं ?"...

बस मदुरा की सभा के बाद उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि वह अब लंगोटी ही पहना करेंगे।

: ३१ :

आज तो तुम लोगों की शादी का दिन है

सेठ जमनालाल बजाज की पुत्री मदालसा का विवाह श्रीमन्नारायण के साथ वर्धा शहर में 'बच्छराज भवन' के सामने सम्पन्न हुआ था। गांधीजी का आशीर्वाद तो प्राप्त हो ही चुका था। उस दिन खूब बारिश हो रही थी। लेकिन गांधीजी कस्तूरबा सहित ठीक समय पर विवाह-मण्डप में पहुंच गये थे। विवाह-संस्कार आश्रमपद्धति के अनुसार लगभग एक घण्टे में समाप्त हो गया। इस अवधि में गांधीजी बराबर चरखा कातते रहे। संस्कार समाप्त होने पर जब वर-वधू उन्हें प्रणाम करने

गये तो उन्होंने अपने हाथ से काते हुए सूत की मालाएं उनको पहनाईं। उसी दिन शाम को उन्होंने उन दोनों को भोजन के लिए सेवाग्राम आने का निमन्त्रण दिया।

संध्या के समय वर-वधू जमनालालजी की 'ऑक्स-फोर्ड' गाड़ी में बैठकर सेवाग्राम की ओर रवाना हुए। यह थी तो बैलगाड़ी ही, लेकिन एक पुरानी फोर्ड गाड़ी के आधे हिस्से से यह बनाई गई थी। इसलिए इसका नाम हुआ था 'ऑक्सफोर्ड'। 'ओक्स' अर्थात् बैल से चलने वाली फोर्ड।

वर्षा तब भी हुए जा रही थी। मार्ग कच्चा था। चारों ओर कीचड़-ही-कीचड़। किसी तरह से वे लोग आश्रम पहुंचे। गाँधीजी उनकी राह देख रहे थे। ठीक समय पर सब आश्रम-वासियों के साथ वे लोग भी भोजन करने के लिए बैठे। गांधीजी स्वयं अपने हाथ से थाली परोसकर प्रत्येक व्यक्ति को देते थे। वर-वधू की थालियां भी उन्होंने बड़े स्नेह के साथ लगाईं। भोजन हुआ। नियम था कि सब लोग अपनी-अपनी थाली मांज-धोकर वापस चौके में रखेंगे, परन्तु जब वर और वधू ऐसा करने लगे तो गांधीजी ने मुस्कराकर कहा, "अरे, आज तो तुम लोगों की शादी का दिन है। आज तुम्हें थाली नहीं उठानी है। तुम उठो और हाथ धोलो।"

मेरी नहीं, शंकरलाल की दवा करो

गांधीजी के प्रयोगों का कोई अन्त नहीं था। उन दिनों बादाम और नारियल का दूध लेने का प्रयोग चल रहा था। खुराक भी कम लेते थे। इसी कारण वजन घट गया था और शरीर भी दुबला होता जा रहा था। लेकिन परिश्रम उसी प्रकार चल रहा था। गुजरात विद्यापीठ की पुनर्रचना की धुन लग रही थी।

इसी समय आश्रम के विद्यार्थियों ने विद्यामन्दिर के वार्षिकोत्सव का आयोजन किया। उन्होंने एक नाटक भी प्रस्तुत किया। गांधीजी चर्खा कातते-कातते उस नाटक को देख रहे थे कि उनके साथियों ने अनुभव किया कि महात्माजी आज विशेष रूप से उदास हैं। उन्होंने उन्हें हंसाने का प्रयत्न किया, लेकिन सफल नहीं हो सके।

थोड़ी देर बाद उन्होंने चर्खा कातना बन्द कर दिया। एक विद्यार्थी तार लपेटने लगा, तभी एकाएक श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने देखा कि महात्माजी मीराबहन के कन्धे का सहारा लेकर उठ रहे हैं। शायद कमजोरी के कारण ही ऐसा हुआ हो कि उसी क्षण उनके पैर लटक गये। शरीर का सारा बोझ मीराबहन पर आ गया। जमनालालजी तुरन्त बोले, "इन्हें फिट आगया है, हरिभाऊ, तुम इनके पैर संभाल लो।"

फिर तो वातावरण पलक मारते जितने समय में कुछ-का-

कुछ हो गया। नाटक बंद हो गया। महात्माजी का शरीर पीला पड़ गया। आंखें खिच आईं। गर्दन लटक गई। लगा, जैसे ब्रह्माण्ड द्रुत गति से घूम रहा हो। अभी दो दिन पहले महात्माजी ने प्रार्थना के समय प्रवचन करते हुए कहा था, "मरना तो ऐसा कि चर्खा कात रहे हैं, कातते-कातते दम निकल गया। बात कर रहे हैं कि बोलते-बोलते सांस छूट गई।"

वह एक अद्भुत दृश्य था। शोक और करुणा से अभिभूत सब लोग तरह-तरह के उपचार कर रहे थे। रुलाई रोकने में उन्हें बड़ी कठिनाई हो रही थी, लेकिन मुश्किल से तीन मिनट भी नहीं बीते होंगे कि महात्माजी ने आंखें खोलीं और रंगमंच की ओर देखा। धीरे-धीरे बोले, "खेल क्यों बन्द कर दिया? उसे जारी करो।"

खेल शुरू हो गया। लोगों के प्राण मानो फिर लौट आए। पांच-सात मिनट और बीत गये। महात्माजी ने पूछा, "मेरा सूत कितना हुआ है, गिना? कितना कम है?"

एक भाई ने कहा, "सोलह तार कम हैं।"

गांधीजी बोले, "मेरा चर्खा लाओ। शेष तार कातने हैं।"

सुनकर सभी व्यक्ति व्यग्र हो उठे। हे राम, यह कैसा बेपीर आदमी है! प्राण अभी पूरी तरह शरीर में लौटे नहीं हैं कि चर्खा कातने का आग्रह कर रहा है! जमनालालजी ने सुझाया, "बापूजी, अब आज न कातें तो ठीक है।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "यह कैसे हो सकता है?"

यह कहते हुए उनके चेहरे पर ऐसा भाव प्रकट हो आया था मानो जमनालालजी को उलाहना देते हों, "जमनालाल,

तुम तो ऐसा न कहते !"

शंकरलालभाई तो बहुत ही परेशान हो उठे। इस समय चर्खा कातने का आग्रह करना उन्हें दुराग्रह जैसा लगा, मानो गांधीजी मौत को जानबूझकर बुलाना चाहते हों. लेकिन गांधीजी तो गांधीजी थे। चर्खा आया और वह कातने बैठ गये। तभी आ पहुंचा डाक्टर। देखकर बोला, "यह तो भले-चंगे हैं। इन्हें क्या देखूं ?"

गांधीजी से हंसकर कहा, "मेरी नहीं, शंकरलाल की दवा करो।"

उसी समय मंच पर नाटक का पात्र कह रहा था, "देखो, अभी दो घड़ी के बाद मेरी मृत्यु होने वाली है, इसलिए धर्म के बारे में जो कुछ पूछना हो, पूछ लो।"

: ३३ :

अपनापन खोकर मैं हिन्दुस्तान के काम का न रहूंगा

आगाखां महल में वन्दी-जीवन बिताते हुए गांधीजी को एक वर्ष हो चुका था। देश की स्थिति को लेकर सरकार से उनका पत्र-व्यवहार बराबर चल रहा था। सरकार उन्हें जेल में रखने के लिए कटिबद्ध जान पड़ती थी, जिससे उनकी अनुपस्थिति में हिन्दुस्तान के संबंध में अपनी गन्दी चालबाजी को अमल में ला सके। लेकिन भारत के नेता उन्हें बाहर देखने के

लिए उत्सुक थे। श्रीनिवास शास्त्री गांधीजी से मतभेद रखते थे, लेकिन उनके संबंध बहुत ही मधुर थे। वह नहीं चाहते थे कि गांधीजी जेल में रहें। उन्होंने उनकी मुक्ति के लिए एक खुली चिट्ठी लिखी। सवेरे घूमते समय एक दिन प्यारेलाल ने गांधीजी से पूछा, "आपको श्रीनिवास शास्त्री की खुली चिट्ठी कैसी लगी ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "भाषा तो अच्छी है मगर और कुछ नहीं है।"

प्यारेलाल ने कहा, "उनका तो यही कहना है न कि किसी भी प्रकार आप बाहर निकल आवें।"

गांधीजी बोले, "वह इतनी बात नहीं समझते कि 'किसी भी' तरह बाहर आकर मैं कुछ भी काम नहीं कर सकता।"

प्यारेलाल ने कहा, "शास्त्रीजी के पत्र का उत्तर लिखूं ?"

गांधीजी बोले, "उत्तर तो एक मिनट में लिखा जा सकता है। वह इतना ही है, "आप क्यों नहीं समझते कि अपनापन खोकर मैं हिन्दुस्तान के काम का न रहूंगा।"

: ३४ :

क्या वह मेरी शिकायत करती है ?

नमक-सत्याग्रह आरम्भ करने से पहले, सदा की भांति, गांधीजी ने सारे देश का दौरा किया। उस यात्रा में वह काशी भी आए और श्रीप्रकाशजी के पास ठहरे। जब वहां से जाने लगे

तो सभी कुटुम्बीजन उन्हें विदा देने के लिए एकत्र हुए। उनमें श्रीप्रकाशजी की माताजी भी थीं। अचानक वह बोलीं, "महात्माजी, आप बा के साथ बहुत बुरा बर्ताव करते हैं।"

कुछ दिन पूर्व कस्तूरबा की एक साधारण-सी गलती को लेकर गांधीजी ने एक बहुत ही मार्मिक लेख लिखा था, "मेरा दुख: मेरी शर्म।" इस लेख में उन्होंने कस्तूरबा की कड़े शब्दों में निन्दा की थी। उन्हें कोई व्यक्ति चार रुपये भेंट में दे गया था और वह उन रुपयों को ठीक समय पर आश्रम के कोष में जमा नहीं करा सकी थीं। इस लेख को पढ़कर अनेक व्यक्तियों को वेदना हुई थी। इसी वेदना के कारण श्रीप्रकाशजी की माताजी ने महात्माजी से उपर्युक्त शब्द कहे। लेकिन गांधीजी ठहरे शंकर महादेव। हँसकर बोले, "बा को मैं खिलाता हूं, पहनाता हूं, उसकी फिकर करता हूं, क्या वह मेरी शिकायत करती है?"

माताजी ने कहा, "मैं कुछ रुपया बा को देना चाहती हूं, वह नहीं ले रही हैं। लेने की अनुमति दे दीजिए।"

महात्माजी ने इस बात को स्वीकार नहीं किया। बोले, "न-न, रुपया बा को नहीं, श्रीप्रकाश को दीजिये, क्योंकि वह मेरे लिए कोष एकत्र करने में परेशान हैं। उस रुपये को उसी में डाल देंगे।"

अन्त में माताजी ने जो सोने की गिन्नी बा के लिए निकाली थी, वह महात्माजी के कोष में जमा करदी गई।

अब तो सेल्फ ठीक हो गया न ?

न जाने कितनी बार गांधीजी ने सारे भारत का भ्रमण किया था। उस बार हरिजन कोष के लिए रुपया इकट्ठा करते हुए वह देहरादून आ रहे थे। वहां ब्रह्मचारी नाम के एक ड्राइवर थे। एक पुरानी-सी टैक्सी चलाते थे। वह महावीर त्यागी से बोले, "महात्मा गांधी को मेरी गाड़ी में बिठाया जाय।"

लेकिन त्यागीजी ने इस बात को स्वीकार नहीं किया। बस ब्रह्मचारी ने सीधे महात्माजी को लिख दिया। वह कभी आश्रम में रह चुके थे। तुरन्त उत्तर आया कि वह उन्हींकी गाड़ी में बैठेंगे।

गांधीजी को लेने के लिए झुण्ड-के-झुण्ड लोग स्टेशन पहुंचने लगे। सिगनल नीचा हो गया। गाड़ी ने प्लेटफार्म में प्रवेश किया और वह रुकी कि ब्रह्मचारीजी की फोर्ड 'पों' पों' करती हुई ठीक महात्माजी की खिड़की के सामने आ लगी। खद्दर से मंडित वह गाड़ी रुई के गालों से ढकी हुई थी, मानों बर्फ पड़ रहा हो।

जलूस नगर की ओर चला। त्यागीजी ने न जाने किस-किस से क्या-क्या वादे कर लिये थे। पहले कुलियों ने इक्यावन रुपये की थैली भेंट की; फिर तांगेवालों ने एक सौ एक रुपये की थैली दी। गांधीजी बहुत खुश थे। बोले, "इन सबको उन पन्द्रह सौ रुपयों में शामिल नहीं किया जायगा, जिनको देने का तुमने वादा किया है, क्योंकि अभी देहरादन नहीं आया है। यह तो

ईस्ट इण्डिया रेलवे है।"

इसी तरह हँसते-हँसाते, थैलियां स्वीकार करते, नगर की ओर चल पड़े। खुली हुई मोटर, दोनों ओर जनता की अपार भीड़। बाजार के एक लाला मित्रसेन ने पांच सौ रुपये की थैली इस शर्त पर देनी स्वीकार की दी कि गांधीजी की मोटर दो मिनट के लिए उनकी दुकान के सामने रुक जाय।

उत्तर प्रदेश की यात्रा के लिए आचार्य कृपालानी व्यवस्था करते थे। उन्होंने यह शर्त स्वीकार नहीं की।

महात्माजी ने यह सुना तो हँस पड़े। परन्तु गाड़ी जैसे ही दुकान के सामने आई, रुक गई। गांधीजी ने पूछा, "क्या हुआ?"

ब्रह्मचारी बोले, "कुछ नहीं, जरा पेट्रोल बन्द हो गया।" यह कहकर वह नीचे उतरे और खटर-पटर करने लगे। तबतक लाला मित्रसेन आटे के दीये जलाते रहे। गांधीजी ने कहा, "अरे, सेल्फ से चलाओ न?"

ब्रह्मचारी बोले, "जी, सेल्फ भी खराब हो रहा है।"

यह देखकर कृपालानीजी के क्रोध का पार न रहा, लेकिन तबतक लालाजी के दिये जल चुके थे। वह थाल लिये हुए बाहर निकले और गांधीजी की सेवा में पांच सौ रुपये पेश कर दिये। गांधीजी ने मुस्कराकर ब्रह्मचारी से कहा, "अब तो सेल्फ ठीक हो गया न?"

ब्रह्मचारी इसी क्षण की राह देख रहे थे। उन्होंने तुरन्त मोटर चला दी। बा और बापू दोनों ठहाका मारकर हँस पड़े। कृपालानीजी को भी मजा आ गया। हँसी दबाकर बोले, "क्या करें, यू० पी० के गुंडों के बीच फंस गये हैं!"

यदि गंगोत्री मैली हो जाय तो...

अग्रवाल-पंचायत ने जमनालालजी बजाज को जाति बहिष्कृत कर रखा था। वह अस्पृश्यों के हाथ का खाते थे, यही उनका सबसे बड़ा गुनाह था। फिर भी एक ऐसा दल था, जो उन्हें छोड़ना नहीं चाहता था। उसी दल के कुछ वृद्ध लोग एक दिन उनसे मिलने आए। बोले, "आप कुछ भी करें, किन्तु अस्पृश्यों के हाथ का न खावें। हमारे संतोष के लिए ही सही। क्या आप हमें इतना विश्वास नहीं दिला सकते कि भविष्य में आप अछूतों के हाथ का पकाया नहीं खायंगे ?"

जमनालालजी ने उत्तर दिया, "आश्रम में तो सभी जाति के लोग रहते हैं। क्या मैं आश्रम में खाने से इंकार करूं ?"

वृद्ध सज्जन बोले, "आश्रम के लिए कौन कहता है, वह तो पुण्य भूमि है। तीर्थस्थान के लिए कोई रुकावट नहीं। अन्य स्थानों पर आप ऐसा न करें, यही हमारी मांग है।"

परन्तु यह मांग भी जमनालालजी कैसे स्वीकार कर सकते थे ? इसलिए अंत में वह शिष्टमण्डल गांधीजी के पास पहुंचा। उन्होंने पूछा, "जमनालालजी अस्पृश्यों के हाथ का खाते हैं। इसमें आपको किसका डर है ? समाज का या धर्म का ?"

एक वृद्ध ने कहा, "धर्म तो हम क्या समझें, समाज की रूढ़ि है कि ऐसा नहीं करना चाहिए। हम जमनालालजी की सब बातें मानते हैं। ये हमारी इतनी-सी बात क्यों नहीं मानते ?"

गांधीजी बोले, "यदि रूढ़ि अच्छी नहीं है तो उसका नाश ही कर देना चाहिए। मैं तो यह जानता हूं, जो शराबी नहीं है, व्यभिचारी नहीं है, उसके द्वारा स्वच्छता से पकाया हुआ, खाने योग्य पदार्थ हमें अवश्य खाना चाहिए। जो अपवित्र रहते हैं, मुर्दे का मांस खाते हैं, शराबी हैं, उनके हाथ का खाने को तो मैं नहीं कहता। आपमें यदि साहस न हो तो आप चाहें ऐसा न करें, लेकिन आप इनको क्यों पीछे हटाना चाहते हैं? आप चाहें तो इनसे यह प्रतिज्ञा करालें कि जो शौचादि को न मानें, उस ब्राह्मण या अब्राह्मण किसी के भी हाथ का ये न खायं। आप तो पंचों के त्रास से भयभीत हैं, लेकिन यदि गंगोत्री मैली हो जाय तो फिर क्या गंगा का पानी स्वच्छ रह सकता है? आज के पंच पंच कहां रह गये हैं? वर्तमान के पंच तो राक्षसी प्रथा के पुजारी हैं। पाखण्ड, स्वार्थ, क्रोध और द्वेष से भरे हुए हैं। मेरी यह भविष्यवाणी है कि अगर हम पंचों का अन्याय नहीं मिटा सकते तो समाज का नाश हो जायगा। धर्म की बड़ी-बड़ी बातें बनाने से न्याय नहीं हो सकता। पंच गंगोत्री मैली हो गई है। इसे शुद्ध करने के लिए हरेक को मर मिटना चाहिए। जमनालाल-जी ऐसा ही कर रहे हैं। उन्हें आप आशीर्वाद दें। आप जमना-लालजी को छोड़ दें, किन्तु उनके लिए प्रेम कायम रखें और पंचायत के जो लोग विरोधी हैं, उनका भी विरोध न करें। वे क्रोध के पात्र नहीं हैं, दया के पात्र हैं। हम क्रोध को अक्रोध से और अशान्ति को शान्ति से ही जीत सकते हैं। इसलिए आप उनसे भी प्रेम करें और जमनालालजी को आशीर्वाद दें कि वह धर्म की रक्षा और अन्याय का सामना करने में कृतकार्य हों।"

इतना कहकर गांधीजी चुप हो गये। सभा में जैसे सन्नाटा छा गया हो। किसी से उत्तर देते नहीं बन पड़ा। चुपके से एक वृद्ध सज्जन ने पगड़ी उतारकर गांधीजी के पैरों में रख दी। कहने लगे, "महाराज, आपने जो कहा, उसे सुनकर तो मैं गद्‌गद् हो गया।"

: ३७ :

जो श्रद्धा की खोज करता है उसे वह जरूर मिलती है

गांधीजी उन दिनों बंगाल की यात्रा पर थे। मार्ग में हर स्टेशन पर हजारों लोग उनके दर्शनों के लिए इकट्ठे हो जाते थे और उनके हरिजन कोष में मुक्त मन से दान देते थे। एक स्टेशन पर एक महिला भीड़ को चीरती हुई तेजी से उनके डिब्बे के पास पहुंची। वह सोने-चांदी के आभूषणों से लदी हुई थी। पास आकर उसने अपने सब आभूषण उतारे और गांधीजी के चरणों में रख दिये। बोली, "महात्माजी, मुझे श्रद्धा दीजिये।"

महात्माजी ने उत्तर दिया, "यह काम तो ईश्वर ही कर सकता है। जो श्रद्धा की खोज करता है, उसे वह जरूर मिलती है।"

मेरा टिकट तुम ले लो

जिराल्डा फॉरबिस गांधीजी से पहले कभी नहीं मिली थीं। जब वह पहली बार इंगलैंड से बम्बई पहुंचीं, तब उन्हें यह नहीं मालूम था कि उन्हें दूसरी ही गाड़ी से लाहौर चले जाना है। वह स्टेशन पहुंचीं, लेकिन मार्ग में उन्हें कुछ देर लग गई। गाड़ी चलने की तैयारी में थी। उसमें स्त्रियों का दूसरे दर्जे का एक ही डिब्बा था और वह पूरी तरह भरा हुआ था। स्थान की तलाश में वह प्लेटफार्म पर इधर-उधर भागने लगीं, लेकिन कहीं जगह नहीं थी। सहसा उनकी दृष्टि एक खाली डिब्बे पर गई। वह पहले दर्जे का डिब्बा था। उन्होंने निश्चय किया कि वह अधिक किराया देकर उसी में यात्रा करेंगी और वह सूचना देने के लिए गार्ड को ढूंढ़ने लगीं। जल्दी में वह यह देखना भूल गईं कि वह डिब्बा सुरक्षित था।

उसके द्वार पर कुछ व्यक्ति खड़े हुए बातें कर रहे थे कि उनमें से एक व्यक्ति ने उन्हें रोककर पूछा, "क्या मैं आपकी कोई मदद कर सकता हूं ?"

उस व्यक्ति का कद छोटा, चेहरा सरल और मुख दन्तहीन था। हँसने पर उनकी हँसी भयानक लगती थी। तभी गाड़ी ने चेतावनी की सीटी दी। वह व्यक्ति सहसा मुड़ा और उसने अधिकार-पूर्वक संकेत किया। गार्ड ने, जो झंडी दिखाने ही वाला था, बदले में अपनी सीटी बजाई। तबतक यह परेशान बहन

अपनी बात कह चुकी थीं। दूसरे सज्जन कुछ परेशान दिखाई दे रहे थे, लेकिन उस व्यक्ति ने अपनी धोती की तह टटोल कर एक टिकट निकाला और उस महिला को देते हुए कहा, "यह मेरा टिकट तुम ले लो और अपना मुझे दे दो।"

दूसरे व्यक्तियों ने तुरन्त इस बात का विरोध किया, लेकिन उसने सबको चुप करा दिया, तबतक आसपास और भी व्यक्ति घिर आये। गाड़ी क्यों रुक गई है, यह देखने के लिए स्टेशन-मास्टर भी दौड़ कर आया, लेकिन उस व्यक्ति ने उसी शान्त भाव से कुली से कहा, "इन महिला का सामान अन्दर रख दो और मेरा बाहर निकाल दो।"

फिर वह उस महिला की ओर मुड़ा और बोला, "बात यह है कि मैं पहले दर्जे में सफर नहीं करना चाहता। मेरे मित्रों ने मुझे सूचना दिये बिना मेरे लिए स्थान सुरक्षित करवा दिया। मैं भी लाहौर ही जा रहा हूं। इसलिए आपसे जगह बदलने में मुझे खुशी होगी।"

विस्मित-चकित वह महिला इतनी अभिभूत हो गईं कि विरोध न कर सकीं और उन्होंने वह परिवर्तन स्वीकार कर लिया। अपने मित्रों के विरोध की तनिक भी चिन्ता किये बिना वह बिना दांत वाला व्यक्ति हँसता हुआ गाड़ी के पिछले हिस्से की ओर चल दिया और एक तीसरे दर्जे में बैठ गया।

वह व्यक्ति और कोई नहीं स्वयं महात्मा गांधी ही थे।

आखिर मुझे एक रास्ता सूझ गया

गांधीजी किसी भी चीज को व्यर्थ नहीं जाने देते थे। पुराने लिफाफों तक का उपयोग करते थे। चिट्ठियों का भी जो भाग कोरा रह जाता था, उसको फाड़ लेते थे। अखबार और पार्सल आदि जिन कागजों में लिपटे रहते थे, उनका भी वह उपयोग करते थे। उन पर वह अपने विचार लिखते या हिसाब लिखते। दुर्भाग्य से ऐसे बहुत से पत्र खो गये हैं, लेकिन जो बच गये हैं उनसे पता लगा सकता है कि वह सम्पादन, छपाई तथा ऐसे दूसरे अनेक कामों के बारे मैं किस तरह की विस्तृत सूचनाएं दिया करते थे। ऐसे रद्दी कागज उनके मौन-दिवस पर बहुत काम आते थे।

एक दिन दोपहर के समय कृष्णदास उनके कमरे में आए तो पाया कि गांधीजी बहुत प्रसन्न हैं। वह बोले, "कृष्णदास, मेरे पास प्रतिदिन बहुत से तार आते हैं। मैं नहीं जानता था कि उनका क्या किया जाय! इसलिए फाड़ देता था। इससे मुझे बड़ा दुख होता था। सोचता था कि क्या इनका कोई उपयोग नहीं हो सकता! आखिर मुझे एक रास्ता सूझ ही गया।"

यह कह कर उन्होंने तार का एक फार्म उठाया और बताया कि किस प्रकार उसका लिफाफा बनाया जा सकता है। फिर उन्होंने आदेश दिया कि भविष्य में इसी प्रकार लिफाफे तैयार किये जायं।

कृष्णदास ऐसा ही करते थे। गांधीजी को उन लिफाफों का उपयोग करते हुए इतनी प्रसन्नता होती थी कि वह सुन्दर कागज के नये लिफाफे छूते तक नहीं थे।

: ४० :

बोलने का अधिकार केवल मुझको है

जब बिहार के तत्कालीन गवर्नर ने चम्पारन के सम्बंध में गांधीजी को मिलने के लिए बुलाया तब सभी को यह डर लगा कि कहीं गांधीजी गिरफ्तार न कर लिये जायं।

उन दिनों गवर्नर राँची में रहते थे। जाते समय गांधीजी ने अपने साथियों से कहा, "यदि मैं गिरफ्तार भी कर लिया जाऊं तो अमुक-अमुक तरीके से काम करते रहना।"

दस बजे गांधीजी गवर्नर से मिलने के लिए अकेले ही रवाना हुए। सोचा, एक-डेढ़ घंटे बात होगी, परन्तु वार्ता पांच-छः घंटे तक चलती रही। उनके साथी तार की राह देखते रहे। पूरा दिन बीत गया, कोई समाचार नहीं मिला। उन्हें लगा, गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया गया है, लेकिन दूसरे दिन तार आ पहुंचा—"कल गवर्नर से वहुत-सी बातें हुईं। आज भी होंगी।"

अन्त में गांधीजी ने अपने तर्कों से गवर्नर को यह समझा दिया कि चम्पारन का यह मामला जांच करने योग्य है। गवर्नर ने तुरन्त एक जांच कमेटी नियुक्त की और गांधीजी से कहा, "आप भी इसमें रहें।"

गांधीजी सहसा तैयार नहीं हुए, परन्तु गवर्नर ने उनसे कहा, "आप कमेटी में रहेंगे तभी हम आपको बता सकेंगे कि इन सौ वर्षों में सरकार के अफसरों ने हिन्दुस्तानी भाइयों के साथ कैसा बर्ताव किया है। आप नहीं रहेंगे तो रिपोर्ट आपको नहीं दिखाई जा सकेगी।"

गांधीजी तुरन्त सहमत हो गये, लेकिन अपने सभी साथियों से उन्होंने कहा, "तुम लोगों में से कोई भी जांच की हुई बातों के विषय में न तो भाषण देगा और न समाचारपत्रों में ही लिखेगा। इस संबंध में बोलने का अधिकार केवल मुझको है।"

इस जांच कमेटी ने सरकार को जो रिपोर्ट दी उसके परिणामस्वरूप निलहों की वे कोठियां उजड़ गईं, लेकिन उनके इस व्यवहार के कारण निलहे गोरे बराबर गांधीजी के मित्र बने रहे।

: ४१ :

यदि मेरे संदेश में सत्य है तो...

गांधीजी साधारणतः सभी लोगों का विश्वास करते थे, परन्तु जहां तक विचारों का संबंध था, वह बड़े तर्कपरायण थे। वह छोटी-छोटी बातों पर भी अड़ जाते और अगर कोई अपना विचार मनवाने के लिए जोर लगाता तो वह और भी दृढ़ हो जाते थे। नमक-सत्याग्रह के समय जब उन्होंने अपनी सुप्रसिद्ध डांडी यात्रा आरम्भ की तब बहुत से साथियों ने सोचा कि

महात्माजी का अन्तिम सन्देश रिकार्ड करवा कर देश भर में प्रचारित किया जाय।

इस संबंध में गांधीजी से प्रार्थना करने के लिए एक शिष्ट-मंडल उनके पास गया। डा० राजेन्द्रप्रसाद भी उस शिष्टमंडल के एक सदस्य थे। उन्होंने अपना प्रस्ताव गांधीजी के सामने रखा, परन्तु गांधीजी ने उसे दृढ़ स्वर में अस्वीकार कर दिया।

उन लोगों ने फिर भी आग्रह किया, करते ही रहे। तब गांधीजी बोले, "मुझे अपनी आवाज में अपना सन्देश रिकार्ड करवा कर नहीं फैलाना है। यदि मेरे सन्देश में सत्य है तो वह बिना रिकार्ड के ही घर-घर पहुंच जायगा और अगर उसमें सत्य नहीं है तो उसका प्रचार करना बेकार है।"

: ४२ :

मैं जैसा हूं, वैसा हूं

कई कारणों से महाराष्ट्र प्रदेश में गांधीजी के अनेक विरोधी मित्र पैदा हो गए थे। जरा-जरा-सी बातों में वे गांधीजी के महा-राष्ट्र-द्वेष का दर्शन करते और फिर बढ़ा-चढ़ा कर उसका वर्णन करते। मध्यप्रान्त के तत्कालीन कांग्रेसी मंत्रिमण्डल से डा० खरे को हटना पड़ा था। इसके पीछे भी उन्हें महाराष्ट्र-द्वेष की गंध आई। अपनी शिष्या महाराष्ट्र की कुमारी प्रेमाबहन कण्टक को गांधीजी ने जो पत्र लिखे, उनमें उन्होंने अपना दिल खोल कर रख दिया था। स्त्री-पुरुषों के वैवाहिक जीवन के बारे में अपने

अनुभव की कुछ बातें निस्संकोच भाव से लिखी थीं। इन पत्रों को भी उन मित्रों ने गांधीजी को बदनाम करने का आधार बनाया।

इन सब बातों से और लोग तो दुखी हुए ही, महाराष्ट्र के ही अनेक सुसंस्कृत भाई-बहन भी बहुत दुखी हुए। उनकी समझ में नहीं आता था कि इस जहरीले प्रचार को कैसे रोका जाय।

उन्हीं में थीं बम्बई की श्रीमती अवन्तिकाबाई गोखले। गांधीजी के प्रति उनकी भक्ति अपार थी। वह प्रतिवर्ष उनके जन्मदिन पर अपने हाथकते सूत की धोती बनाकर भेजती थीं। उस वर्ष भी उन्होंने ऐसा ही किया, लेकिन उसके साथ जो पत्र लिखा, उसमें अपने दिल की गहरी व्यथा प्रकट करते हुए उन्होंने कहा, "आपके विरोध में मराठी जगत के पत्रों और पत्रिकाओं में इधर जैसा झूठा और विषैला प्रचार हो रहा है, उसे और अधिक सहने की शक्ति मुझमें नहीं रह गई है। मन अत्यन्त दुखी है। आप बिलकुल मौन हैं। न कुछ लिखते हैं, न बोलते हैं। हमें रास्ता सूझ नहीं रहा है। कोई ऐसा उपाय होना चाहिए, जिससे यह विष और अधिक न फैले।"

उसके उत्तर में गांधीजी ने लिखा, "वहां के कुछ मित्रों द्वारा मेरे विषय में जो विरोधी प्रचार हो रहा है, मैं उससे बेखबर नहीं हूं। लेकिन मैं करूं क्या? जिस तरह कुछ मित्र मेरी घोर-से-घोर निन्दा करने में रस ले रहे हैं, उसी तरह कुछ मित्र ऐसे भी हैं, जो मेरी बहुत बढ़ा-चढ़ाकर प्रशंसा भी करते हैं। निन्दा करने वालों की निन्दा से मैं क्यों मुरझाऊं? प्रशंसा करने वालों की प्रशंसा से क्यों फूलूं? मैं निन्दा करने वालों की निन्दा से न

तो घटता हूं और न प्रशंसा करने वालों की प्रशंसा से बढ़ता ही हूं। जैसा भी हूं, वैसा हूं। न रज भर छोटा, न रज भर बड़ा। अपने सृजनहार के सामने आदमी सच्चा बना रहे तो फिर कहीं उसे खटका रहे ही नहीं।"

: ४३ :

उनकी रक्षा करना आपका दायित्व है

असहयोग आन्दोलन के प्रथम युद्ध में गांधीजी मद्रास गये थे। मार्च (१९१९) का महीना था और वह श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य के पास ठहरे हुए थे।

एक दिन तामिलनाडु के प्रसिद्ध कवि भारती उनसे मिलने आये। बिना किसी औपचारिकता के उन्होंने गांधीजी से पूछा, "मि० गांधी, आज शाम को सागर तट पर एक सभा का आयोजन किया गया है। मेरा भाषण होगा। आप उसके अध्यक्ष पद का आसन ग्रहण करेंगे ?"

गांधीजी ने सहज भाव से उत्तर दिया, "अगर कल सभा हो तो मैं आ सकूंगा।"

भारती बोले, "यह नहीं हो सकता। सभा आज ही है। आपके असहयोग आन्दोलन की जय हो !"

यह कह कर भारती वहां से चले गये। न जान, न पहचान, फिर भी यह निर्भीकता ! गांधीजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। पूछा, "यह कौन हैं ?"

राजाजी ने उत्तर दिया, "ये तामिलनाडु के राष्ट्रीय कवि सुब्रह्मण्य भारती हैं।"

यह सुनकर गांधीजी ने कहा, "तब इनकी रक्षा करना आप लोगों का दायित्व है।"

: ४१ :

ईश्वर ने जो कुछ दिया है सदुपयोग के लिए

नोआखाली-प्रवास के समय गांधीजी श्रीरामपुर में ठहरे हुए थे। उस दिन वह रात को दो बजे उठे। मनु को जगाया। उसी दिन मनु के लिए छींट के सलवार और कुर्ते बनकर आए थे। गांधीजी ने उससे पूछा, "तुमने छींट या किस प्रकार की खादी ली जाय इस बारे में...से कुछ कहा था ?"

मनु ने उत्तर दिया, "यह कपड़ा वह नहीं लाये हैं। आपने बिरलाजी के आदमियों से कहा था, वे लाये हैं।"

गांधीजी बोले, "तब तो क्या कमी हो सकती है ? परन्तु मन में यदि यह भाव हो कि ऐसे कपड़े पहनने से और अच्छी लगूंगी तो उसे निकाल देना। मनुष्य स्वाद के लिए भोजन को खट्टा, मीठा और तीखा बनाता है, परन्तु यदि वह यह वृत्ति पैदा करे कि हमारा शरीर एक देवस्थान है, इसका उपयोग सेवा के लिए होना चाहिए और सेवा करने के लिए पौष्टिक भोजन करने से शरीर कायम रह सकता है तो उस मनुष्य का जीवन

भव्य बनता है। यही बात कपड़े पर भी लागू होती है। कपड़े शरीर ढकने के लिए और सर्दी-गर्मी से शरीर की रक्षा करने के लिए हैं, न कि फैशन दिखाने के लिए। आज तो हर बात में फैशन-ही-फैशन है। मन में दुख होता है कि क्या हमारी संस्कृति का नाश बहनें ही करेंगी ?"

इसके बाद चुस्त कपड़े पहनने से क्या हानियां होती हैं, इसकी चर्चा करते हुए वह बालों के शृंगार पर आ गये। बोले, "मैंने तुमसे बालों की सादगी के बारे में कहा तो है ही, एक बात और कहता हूं कि बालों में जितनी सादगी रहेगी वे उतने ही सुन्दर रहेंगे। बाल सिर की रक्षा के लिए हैं। ईश्वर ने जो कुछ दिया है, वह सब सदुपयोग के लिए ही दिया है। उसकी दी हुई एक भी चीज व्यर्थ नहीं।"

: ४५ :

वह इंकार करेगा तभी मैं सो सकूंगा

उन दिनों गांधीजी का यह नियम था कि वह प्रतिदिन अपने तीसरे पुत्र रामदास को एक घंटा गुजराती, संस्कृत और अंग्रेजी पढ़ाते थे। पाठ्य पुस्तकों में हिन्दू धर्म की पहली पुस्तक, 'यंग इण्डिया' के लेख और उनके भाषांतर भी सम्मिलित थे।

उसी अवधि में एक बार राष्ट्रीय महासभा की बैठक अहमदाबाद म्युनिसिपल कमेटी के नये हाल में आयोजित की गई। गांधीजी प्रतिदिन सवेरे चार बजे से रात के दस बजे तक

नेताओं के साथ मंत्रणा में लगे रहते थे। एक दिन वह रात के ९ बजे लौटे और बा से पूछा, "रामा कहां है ?"

बा ने उत्तर दिया, "वह तो थककर सो गया है। उसे अब न जगाइये।"

गांधीजी बोले, "लेकिन मैंने तो उसे प्रतिदिन एक घंटा पढ़ाने का नियम बनाया है। वह इन्कार करेगा तभी मैं सो सकूंगा।"

उस दिन भी नियम भंग नहीं हुआ। रामदास को जगाकर उन्होंने जब उसे कुछ देर पढ़ा लिया तभी वह शान्ति से सो सके।

: ४६ :

अब तो यह हरिजनों का हो गया

गांधीजी के एक निकट के साथी के विवाह के अवसर पर उसके एक धनिक मित्र ने एक कीमती जेवर भेंट करने की इच्छा की, परन्तु जिनका विवाह था, वह उस उपहार को स्वीकार करना नहीं चाहते थे। तब वह धनिक मित्र गांधीजी के पास आये और बोले, "वह योंही तकल्लुफ कर रहे हैं, उपहार नहीं लेते।"

गांधीजी ने उस जेवर को देखा। उसकी प्रशंसा भी की, लेकिन उनका विचार था कि जब दूल्हा नहीं चाहता तो उसे उपहार नहीं देना चाहिए।"

बेचारे धनी सज्जन निराश तो हुए, लेकिन क्या कर सकते थे। बोले, "अच्छा, लाइये, मेरा जेवर मुझे लौटा दीजिये।"

गांधीजी ने कहा, "अब तो यह हरिजन का हो गया। वापस नहीं मिल सकता।"

धनी मित्र ठगे-से गांधीजी को देखते रह गये। लेकिन कुछ कह भी तो नहीं सकते थे। आधे मन से उनकी बात स्वीकार करके वह लौट चले, लेकिन गांधीजी उनके मन की बात जान गये थे। कुछ देर बाद संदेश भेजा, "जेवर ले जाइये, लेकिन उसकी कीमत जितने रुपये हरिजन फण्ड में भेज दीजिये।"

दूसरे दिन उस जेवर के बदले में उन्हें उसकी कीमत से भी अधिक का चैक मिल गया।

: ४७ :

बोलो, मैं कितना आज्ञाकारी हूं ?

१९४७ में बिहार में भी साम्प्रदायिक अग्नि प्रज्वलित हो उठी थी। गांधीजी उसे शान्त करने के लिए वहां भी पहुंचे। एक ओर उनका यह कार्य चलता था तो दूसरी ओर उनके नित्यकर्म में भी कोई अन्तर नहीं पड़ता था। मनु गांधी उनके साथ थी। उसकी परीक्षा लेने से भी वह नहीं चूकते थे। उस दिन उन्होंने गीता के तीसरे और पांचवें अध्याय को लेकर मनु की मौखिक और लिखित दोनों परीक्षाएं लीं। दोनों में ही वह सफल हुई। गांधीजी बोले, "तुम से ज्यादा संतोष तो मुझे हुआ कि मैं

परीक्षा में सफल हुआ।"

मनु ने कहा, "मेहनत मैंने की और यश आप ले रहे हैं।"

गांधीजी हँसते-हँसते बोले, "परन्तु मेरी तैयारी अपयश लेने की भी थी न। तुम्हारी तो वह तैयारी नहीं थी।"

इस प्रकार विनोद करते हुए गांधीजी तुरन्त अपना बंगाली पाठ लिखने बैठ गये। निर्मल दा को दिखाया। घड़ी-भर पहले परीक्षक थे, घड़ी-भर बाद विद्यार्थी बन गये। लेकिन पहली रात वह ढाई बजे पेशाब करने के लिए उठे थे और उसके बाद फिर सो नहीं सके थे। यही सोचते रहे कि लोगों को अपनी बात कैसे समझायें। इतना होने पर भी वह थके नहीं। सब काम पूर्वतः किए। सर्वश्री शाहनवाज़ खां और खान अब्दुल गफ्फार खां से बातें करते रहे। उस दिन विशेष रूप से मनु के संबंध में बातें हुईं। पूरा कौटम्बिक इतिहास उन्हें बता डाला।

फिर मालिश करवाते समय उन्होंने मनु से कहा, "खान साहब और शाहनवाज़ को हरेक बात की जानकारी देना मेरा धर्म है। पर ये तो महाश्रद्धालु मनुष्य हैं। मेरी बुराई देखना ही नहीं चाहते। तुम समय-समय पर उनके साथ बातें करती रहना। तुम्हें भी बहुत कुछ जानने को मिलेगा। अत्यन्त श्रद्धालु मनुष्य की अपेक्षा मेरा दोष देखनेवाले लोग मुझे अधिक पसन्द होते हैं। इसमें मेरी रक्षा होती है। यह सोचने का मौका मिलता है कि मैं कहीं गलत रास्ते पर तो नहीं हूं।"

मनु जानती थी कि वह ढाई बजे से जाग रहे हैं। बोली, "आप इस समय सो जायं तो अच्छा है। ढाई बजे से जाग रहे हैं। फिर मुझे सारी बातें समझाने की तकलीफ कर रहे हैं। यह सब

पाप मेरे सिर पर होगा।"

गांधीजी मान गये। बीस मिनिट सोये। उठकर कहने लगे, "देखो, तुम्हारी सलाह मानी तो मैं सचमुच ताजा हो गया। बोलो, मैं कितना आज्ञाकारी हूं।"

: ४८ :

भगवान ने हम सबको उबार लिया

एक दिन आश्रम के तत्कालीन मंत्री श्री छगनलाल जोशी नें गांधीजी को सूचना दी कि श्री छगनलाल गांधी के जिम्मे कोठार का जो काम है, उसके हिसाब में गड़बड़ पाई गई है।

उस दिन शाम की प्रार्थना के बाद गांधीजी ने बड़े व्यथित हृदय से सभी को बताया कि आज आश्रम में एक भारी पाप प्रकट हुआ है। छगनलाल गांधी ने असत्य का आचरण किया है। हमारा संकल्प रहा है कि हम इस आश्रम में सत्य का आचरण करेंगे, इसीलिए इसका नाम 'सत्याग्रह आश्रम' रखा था, लेकिन अब हमें कोई अधिकार नहीं है कि इस नाम को बनाए रखें। आज से हम आश्रम को 'उद्योग मंदिर' कहेंगे। केवल यह प्रार्थना-भूमि ही 'सत्याग्रह आश्रम' कहलायगी।

उसके बाद गांधीजी अपने निवास-स्थान पर पहुंचे। छगनलालभाई सहित सभी पुराने साथी वहां आ गये। गांधीजी ने बड़ी तीव्रता से आत्मनिरीक्षण शुरू किया। वह अपने भतीजे के दोष को अपने ही किसी दोष का प्रतिबिम्ब मानने लगे और अपने

को कोसने लगे। सभी लोग विकल हो उठे। थोड़ी ग्राना-कानी के बाद श्री छगनलाल गांधी ने ग्रपना ग्रपराध स्वीकार कर लिया। दुखी होकर वह रोने लगे। सभी उपस्थित व्यक्ति मानो एक करुण विषाद से भर उठे। इसी समय किसीने बापू के सामने एक ग्रौर समस्या उपस्थित की। कुछ दिन पहले कोई ग्रपरिचित भाई ग्राश्रम देखने ग्राए थे। उन्होंने भेंट-स्वरूप चार रुपये कस्तूरबा को दिए थे। बा ने वे रुपए तुरंत ग्राश्रम के दफ्तर में जमा नहीं कराये थे। कुछ दिन बाद कराए थे। गांधीजी को इस बात से सन्तोष नहीं हुग्रा। उन्होंने बा को दोषी माना। उनसे वचन लिया कि ग्रगर ग्रागे से उनसे कोई ऐसा दोष हुग्रा या पुराना कोई दोष प्रकट हुग्रा तो वह उन्हें ग्रौर ग्राश्रम को छोड़ देंगी।

उस रात तीन बजे तक ग्रात्मशुद्धि का यज्ञ चलता रहा। उसके बाद साथियों को विदा करके गांधीजी कागज-कलम लेकर एक लेख लिखने के लिए बैठ गये। उन्होंने उस समय जो लेख लिखा, वह एक ऐतिहासिक लेख है। उन्होंने ग्रपने भतीजे श्री छगनलाल गांधी ग्रौर कस्तूरबा के दोषों की स्पष्ट चर्चा की ग्रौर जनता-जनार्दन के सामने ग्रपना हृदय उंडेलकर रख दिया।

देश-विदेश में जिस किसीने भी इस लेख को पढ़ा, वह स्तब्ध रह गया। कुछ व्यक्तियों के दिल दुःख से भर ग्राए। कुछ को गांधीजी पर क्रोध ग्राया। कस्तूरबा पर लगाए गए ग्रारोपों की बात पढ़कर सरोजिनी नायडू को गहरी चोट लगी। उन्होंने इसे भारत की स्त्रीजाति का ग्रपमान माना। वह तुरन्त हैदराबाद से साबरमती पहुंचीं ग्रौर सीधे बा के पास चली गईं। उनका मन

कड़वाहट से इतना भर गया था कि वह गांधीजी से मिलना भी नहीं चाहती थीं, लेकिन गांधीजी तो गांधीजी थे। समाचार पाकर हँसते-हँसते उनसे मिलने आए। उन्हें देखते ही वह उबल पड़ीं और उन्हें खूब आड़े हाथों लिया। गांधीजी शांत, निरुद्विग्न भाव से सबकुछ सुनते रहे। जब सरोजिनी देवी मन का गुबार निकाल चुकीं तो वह सहज भाव से हँसते हुए बोले, "सरोजिनी देवी, आज की यह घड़ी नाराज होने की नहीं है, खुशी से नाचने की है। समझ लो कि भगवान ने हम पर बहुत बड़ी कृपा की। अगर वह मुझसे यह लेख न लिखवाता और मैं उन दोषों को दबाकर बैठ जाता तो यह आश्रम आश्रम न रहता। नरक का धाम बन जाता। मुझसे यह लेख लिखवाकर भगवान ने हम सबको उबार लिया। फूल की तरह हल्का बना दिया। अब न छगनलाल कभी कोई ऐसा दोष कर सकेगा, न कस्तूरबा, न आश्रम के दूसरे साथी और न स्वतन्त्रता के संग्राम में लगे हुए अन्य देशवासी। इसलिए मैं तो कहता हूं कि तुम्हारी नाराजी अब खुशी में बदलनी चाहिए और हम सबको भगवान की इस महान कृपा के लिए उसके गुण गाने चाहिए।"

: ४९ :

डाक्टर अपने रोगी को कैसे छोड़ सकता है !

सेवाग्राम आश्रम में गांधीजी की कुटिया के सामने पूर्व की ओर एक और कुटिया थी। उसमें ठहरते थे उनके निकटतम

अतिथि। उन दिनों आचार्य नरेन्द्रदेव उसी में ठहरे हुए थे। वह बहुत बड़े विद्वान ही नहीं थे, स्वतन्त्रता-संग्राम के तपे हुए नेता भी थे। कांग्रेस के भीतर समाजवादी दल के वह संस्थापक थे। दमे से वह सख्त पीड़ित थे। गांधीजी ने देखा तो अपने साथ सेवाग्राम ले आये।

उन्हीं दिनों भारत के भाग्य का फैसला करने के लिए 'क्रिप्स-मिशन' भारत आया था। स्वाभाविक था, गांधीजी की पुकार होती। वह दिल्ली गये, बातें कीं और फिर तुरन्त लौट पड़े। प्रेस प्रतिनिधियों ने पूछा, "आप थोड़ा और क्यों नहीं ठहर जाते ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "कोई डाक्टर अपने रोगी को कैसे छोड़ सकता है ?"

और वह आचार्य नरेन्द्रदेव की देखभाल करने के लिए अपने आश्रम में लौट आए।

: ५० :

यह तो बड़ी अच्छी बात है

एक दिन एक वृद्ध पुरुष गांधीजी के दर्शन करने आया। गांधीजी को सूचना दी गई और उनकी स्वीकृति आने पर उस वृद्ध को उनके पास भेज दिया गया। वहां पहुंचते ही उस स्वच्छ खादीधारी वृद्ध पुरुष ने गांधीजी के आगे सौ-सौ रुपये के दस नोट रख दिये और कहा, "जो सबसे गरीब और सत्पात्र हों उन्हीं के

लिए यह तुच्छ भेंट हैं। आपसे अधिक पता ऐसे दरिद्रनारायण का और किसे हो सकता है ?"

गांधीजी ने कहा, "यह आपने बड़ा अच्छा काम किया है, पर यह तो बतलाओ, यह रकम कितने वर्षों में बचा-बचाकर जमा की थी ?"

वृद्ध ने उत्तर दिया, "बहुत वर्षों में, लेकिन मैंने सौ रुपये तो पारसाल भूकम्प पीड़ितों के लिए भेज दिये थे और सौ रुपये आसाम के बाढ़-पीड़ितों के लिए। चार साल हुए, इलाहाबाद में किसानों की सहायता के लिए। मैंने पांच सौ रुपये दिये थे।"

यह सुनकर गांधीजी जितने प्रसन्न हुए, उतने ही चकित भी। पूछा, "अच्छा, तो यह तो बतलाओ भाई, आपकी तनख्वा क्या थी ? और पेंशन क्या मिल रही है ? आप क्या काम करते थे ?"

वृद्ध ने उत्तर दिया, "मैं एक स्कूल में अध्यापक था। बहुत वर्षों के बाद जब मैंने अवकाश ग्रहण किया तब मुझे बावन रुपये मासिक वेतन मिलता था। मुझे पेंशन कुछ नहीं मिलती, पर सत्ताईससौ रुपये मुझे बतौर इनाम के मिले थे।"

गांधीजी ने पूछा, "अवकाश ग्रहण किये कितने वर्ष हुए ?"

वृद्ध ने उत्तर दिया, "पांच वर्ष।"

गांधीजी ने पूछा, "गुजर कितने रुपयों में हो जाती है ?"

वृद्ध ने कहा, "थोड़ी-सी दाल-रोटी में खर्च ही कितना होता है ! दस रुपये में मैं अपनी गुजर कर सकता हूं। अब अकेला राम ही तो हूं। न किसीकी चिन्ता, न फिक्र। पहले अपने दो भतीजों की परवरिश करनी पड़ती थी। उन्हें पाल-पोसकर पढ़ा-लिखा

दिया। अब मैं निश्चिन्त हो गया हूं। एक संस्कृत पाठशाला खोल रखी है। अधिकतर उसीमें अपना समय लगाता हूं। वह निःशुल्क पाठशाला है।"

गांधीजी प्रभावित होकर बोले, "अच्छा, इस तरह अपनी छोटी-सी तनख्दा में से इतना रुपया बचाया है और आज उसे गरीबों के सेवाकार्य में लगा रहे हैं! यह तो बड़ी अच्छी बात है। क्या ही अच्छा हो कि हरेक मनुष्य आपसे यह परमार्थ की कला सीख ले!"

वृद्ध ने उत्तर दिया, "महात्माजी, मैंने अपने ऊपर बहुत ही कम खर्च किया है। इसीसे मैं कभी-कभी गरीबों की थोड़ी-बहुत सेवा-सहायता कर सका हूं।"

गांधीजी ने पूछा, "और यह सुन्दर खादी कहां मिली? यह तो बहुत मोटी खादी है। शाल या कम्बल ओढ़ने की तो आपको अब जरूरत ही नहीं।"

वृद्ध ने कहा, "यह घर की ही बनी है।"

गांधीजी बोले, "काश, मैं भी आपकी ही तरह ऐसी ही मोटी खादी ओढ़ता!"

हर्षातिरेक से प्रफुल्लित उस वृद्ध ने कहा, "मेरे पास अब भी कुछ रुपये जमा हैं, महात्माजी। मैं वे सब किसी दिन लाकर आपके चरणों में रख दूंगा। मैं नहीं जानता कि यह रुपया दूं तो किसे दूं? मैं तो बस एक आपको जानता हूं और आप असहाय, अनाथ, गरीबों को पहचानते हैं। मैं हृदय से आपका आभारी हूं।"

आप जरा भी न हिलें

सन् १९४५ की बात है। सर पुरुषोत्तम दास ठाकुरदास उन दिनों रोग-शैया पर थे। गांधीजी जब बम्बई पहुंचे तो उन्होंने अपने मेजबान श्रीबिरलाजी से कहा, "मैं आज शाम की प्रार्थना के बाद सर पुरुषोत्तदास ठाकुरदास से मिलना चाहता हूं।"

बिरलाजी ने उत्तर दिया, "रात के लगभग साढ़े आठ बजे उनसे मिलना सम्भव नहीं होगा।"

गांधीजी बोले, "यदि वह मुझसे नहीं मिल सकते तो मैं ही जाकर उनसे मिलूंगा।"

और वह डा० सुशीला नैयर तथा एक दूसरे मित्र के साथ उसी रात उनके घर गये। उस समय नर्स उनके सोने की तैयारी करने जा रही थी। इतने में नौकर ने आकर गांधीजी के आगमन की सूचना दी। यह सुनकर उनकी पत्नी बड़ी परेशानी में पड़ गई। उनसे कहे भी तो क्या कहे? लेकिन उनका स्वागत तो करना ही था! तुरन्त नीचे गई। गांधीजी ने उनसे पूछा, "क्या पुरुषोत्तमदास घर में हैं?"

पत्नी ने जवाब दिया, "जीहां हैं, लेकिन वह नीचे आ सकेंगे या नहीं, इसमें मुझे सन्देह है।"

हँस कर गांधीजी बोले, "मैं खुद ऊपर जा सकता हूं और अगर आप चाहेंगी तो अपने साथ आपको भी ले जा सकता हूं

ताकि आपको यह विश्वास हो जाय कि मैं कैसी सीढ़ियों पर चढ़ सकता हूं।"

वह सीढ़ियां चढ़कर रोगी के कमरे के प्रवेश-द्वार पर पहुंच गये। बाहर से ही उल्लसित स्वर में बोले, "आप जरा भी न हिलें। मैं खुद आपके पास आकर बैठ जाऊंगा।"

बीमारी आदि के बारे में बिना एक शब्द पूछे वह इस प्रकार वार्त्तालाप करने लगे, मानो रोगी को स्वास्थ्य लाभ करा रहे हों। बीस मिनट बाद वह वहां से विदा हुए। जो नर्स वहाँ उपस्थित थी उसने पहली बार गांधीजी को देखा था। बोली, "यदि बीमारपुर्सी के लिए आने वाले सभी लोग ऐसे हों तो मैं निश्चित रूप से कह सकती हूं कि रोगी को स्वास्थ्य लाभ कराने में डाक्टरों की अपेक्षा वे अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे।"

: ५२ :

मेरे लिए तो यह पवित्र यात्रा है

गांधीजी की नोआखाली की सच्ची यात्रा चण्डीपुर गांव से शुरू हुई। उस दिन चलने से पहले कई बहनों ने बापू के मस्तक पर तिलक लगाया और प्रार्थना की। गांधीजी की इच्छा के अनुसार उस दिन 'वैष्णव जन तो तेने कहिये' भजन गाया गया। लेकिन उसमें इतना परिवर्तन कर लिया गया था कि हर कड़ी पर जहां 'वैष्णव जन' शब्द आता है वहां बारी-बारी से 'मुस्लिम-जन', 'ख्रिस्ती जन', 'सिक्ख जन', 'पारसी जन',

'हरिना जन' गाया गया। गांधीजी स्वयं भी स्वर-में-स्वर मिला रहे थे।

यहां से उन्होंने चप्पल पहनना भी छोड़ दिया। पूछा गया, "आप ऐसा क्यों करते हैं?"

उनका उत्तर था, "हम जब मन्दिर, मस्जिद या चर्च में जाते हैं तो चप्पल उतार देते हैं, यानी पवित्र स्थानों पर हम चप्पल नहीं पहनते। मैं तो दरिद्र-नारायण के पास जा रहा हूं। उनके सगे-संबंधी लुट गये हैं, उनकी स्त्रियों और बच्चों का कत्ल हुआ है। उनके पास लाज ढकने के लिए कपड़े भी नहीं हैं। मुझे ऐसे लोगों से मिलना है। मुझे ऐसी जमीन पर चलना है। मेरे लिए तो यह पवित्र यात्रा है। इस यात्रा में चप्पल कैसे पहनूं?"

ये शब्द कहते समय गांधीजी के हृदय में जो मन्थन चल रहा था, उसका अनुभव वे ही कर सके थे, जो उनके साथ थे। उनके तलवे बहुत मुलायम थे। उनमें कांटे गड़ गये, बिवाइयां फट गयीं। लेकिन उन्होंने चप्पल नहीं पहनीं।

: ५३ :

वह बल तो तुम्हारे अंदर भी है

घटना जून, १९३५ की है। सेवाग्राम में एक दिन कुछ घुमक्कड़ पहलवान आ पहुंचे और गांधीजी को कसरत के दो-चार खेल दिखाने का आग्रह करने लगे। गांधीजी ने कहा, "एक

तो मेरे पास समय नहीं है, दूसरे जो चीज देश के काम नहीं आती उसे देखने में मेरा मन नहीं लगता। फिर तुम्हें इनाम चाहिए, वह मैं कहां से दूंगा ?"

लेकिन वे लोग भला कब मानने वाले थे ! उन्हें अपनी कसरत के हाथ दिखाने ही थे। वे लोग एक मुक्के से पत्थर तोड़ सकते थे, पर गांव का रास्ता ठीक करने को कहा जाय तो नहीं कर सकते थे। भारी-से-भारी वजन उठा सकते थे, पर किसी संकट-निवारण के काम में जाने के लिए उनका मन उन्हें आज्ञा नहीं देता था। इतना शारीरिक बल होते हुए भी वे भिखारी ही बने रहते थे। पैसा कमाने के अतिरिक्त अपनी शक्ति का कोई और उपयोग उन्हें नहीं सूझता था। कलकत्ता जाने के लिए उन्हें पैसे की जरूरत थी। उन्होंने कहा, "हम बहुत ही लाचार हैं।"

गांधीजी बोले, "लाचारी और तुम्हें! तुम्हारे शरीर में तो इतना अधिक बल है कि एक घूसा मारकर पत्थर तोड़ सकते हो। मैं तोड़ना चाहूं तो मेरा हाथ ही टूट जाय।"

उनमें से एक ने उत्तर दिया, "पर आपके पास तो एक दूसरा ही उच्च प्रकार का बल है।"

गांधीजी बोले, "वह बल तो तुम्हारे अन्दर भी है।"

पहलवान ने कहा, "जी नहीं। हमारे अंदर वह बल होता तो हम आज गांव-गांव भीख मांगते न फिरते !"

गांधीजी बोले, "वह बल जितना मेरे पास है, उतना ही तुम्हारे पास भी है। अन्तर इतना ही है कि तुम्हारे अन्दर वह सो रहा है और मेरा बल जागृत है, काम करता है। मैंने उसको विक-

सित किया है। हर आदमी उसे विकसित कर सकता है। लेकिन हर आदमी पहलवान नहीं बन सकता। मैं तो प्रयत्न करने पर भी नहीं हो सकता।"

: ५४ :

हम सब तो ट्रस्टी हैं

सन् १९३६ के आरम्भ में सेवाग्राम-आश्रम में एक हट्टा-कट्टा नवयुवक गांधीजी के पास आया। बोला, "आप मुझे अपने यहां नौकर रख लीजिये।"

विनोबाजी के आदमियों के नीचे उसने काम किया था, इसलिए गांधीजी उसे मना नहीं कर सकते थे। कहा, "तुम्हें हम अपने कुटुम्ब के आदमी के रूप में दाखिल कर लेंगे, बतौर नौकर के नहीं, क्योंकि हम अपने यहां किसी को नौकर नहीं रखते। और जगह जितना तुम्हें मिले, उससे कुछ ज्यादा ही पैसा हम तुम्हें देंगे। खाना अलग। शर्त केवल इतनी है कि तुम एक कुटुम्बी की तरह काम करोगे।"

कई महीनों तक वह विश्वास के साथ काम करता रहा। प्रसन्न मन से बिना थके वह काम करता रहता था। अपने काम के अलावा भणसालीजी की सेवा जैसे कुछ और भी काम उसने स्वेच्छा से स्वीकार कर लिये। वह नित्य नियम से प्रार्थना में भी आता था। काम यदि अधिक होता तो भी वह उसी आनन्द के साथ करता।

लेकिन फिर भी वह चोरी करने के लोभ में फंस गया। पहली बार जब चोरी की तो पता नहीं लगा। दूसरी बार पकड़ा गया। स्वीकार करने का उसमें साहस नहीं था, परन्तु गांधीजी ने अपने आत्यंतिक प्रेम के बल से उससे अपराध स्वीकार करवा ही लिया। उसकी अपराध-स्वीकृति से सबकी आंखों के सामने एक दुखद चित्र खिच गया। हमारे देश के निर्धन व्यक्ति कैसी बुरी हालत में रहते हैं! पहली बार उस युवक ने अपनी गाय के लिए थोड़ा-सा गेहूं का भूसा चुराया था। इस बार अपने बाप के लिए कुछ सेर गेहूं चुराये थे। बेचारा बुड्ढा बाप दमे से पीड़ित था। काम नहीं कर सकता था। घर में स्त्री थी और कई बच्चे भी। बेचारी स्त्री बड़ी मुश्किल से मजूरी आदि करके किसी तरह परिवार का पेट पालती थी। नवयुवक की अपनी स्त्री और तीन बच्चे भी थे। लेकिन घर में कमाने वाले केवल दो ही थे—वह युवक और उसकी मां। उसकी स्त्री बीमार थी।

बुड्ढा दस मील दूर एक गांव में रहता था। युवक आश्रम के पास एक कोठरी में। कोठरी का उसे डेढ़ रुपया महीना किराया देना पड़ता था, जो उसके वेतन के दस प्रतिशत से अधिक पड़ता था।

वह बहुत दुःखी था। उसे अपनी सद्वृत्ति के विरुद्ध जिन परिस्थितियों में चोरी करनी पड़ी, उन पर विचार करते हुए आश्रम के लोगों को भी दुःख हुआ। युवक ने गांधीजी से कहा, "मुझे आप जो चाहें, सजा दें। मेरी तो आपके पास आने की हिम्मत भी नहीं पड़ती थी। मुझे ऐसा लगता था कि यहां से कहीं चला जाऊं। मुझे अब यहां अपना मुंह नहीं दिखाना चाहिए।

आपने मुझ पर अपार स्नेह रखा है। आपने मुझे घर का ही आदमी समझा है। पर मैं आपके स्नेह का पात्र नहीं हूं।"

गांधीजी बोले, "मैं तुम्हें कुछ सजा नहीं दे सकता। निकाल भी नहीं सकता। मैं तो इतना ही कहता हूं कि फिर कभी ऐसा न करना। तुम्हें जिस चीज की जरूरत हो, मांग लेना, पर चोरी न करना। यहां जो कुछ है, वह जनता की सम्पत्ति है। हम सब तो ट्रस्टी हैं। तुम्हारा पिता भले हो यह गेहूं ले जाय।"

बुड्ढा वहीं था। कपड़े के एक टुकड़े की ओर इशारा करके बोला, "यह भी मुझे ले जाने दो।"

गांधीजी ने कहा, "ले जाओ। लेकिन तुम्हारे लड़के को फिर कभी इस तरह लालच में नहीं पड़ना चाहिए।"

: ५५ :

लाओ, काड बोर्ड का वह टुकड़ा दो

सन् १९५३ में चिथड़ा लपेटे एक ऐसा बुड्ढा सेवाग्राम आश्रम में आया, जो सवेरे से शाम तक काम में जुटा रहता। कूड़ा-कचरा उठाने या दूसरा और कोई भी हल्के-से-हल्का काम करने से उसे कोई आपत्ति नहीं थी। उसका एक भी दांत नहीं गिरा था। चौबीस घंटे में वह एक ही बार खाता था।

कुछ दिनों के लिए वह आश्रम से चला भी गया, लेकिन फिर वापस आ गया। वर्षा, सर्दी कुछ भी तो उसके त्साह को भंग नहीं कर सकता था। हमेशा उघाड़े शरीर, फटी-पुरानी

धोती पहने हुए उसे काम करते ही पाया जाता था। एक दिन उसने गांधीजी के पास आकर कहा, "मुझे अब एक जोड़ा जूता चाहिए। दिन में तो मुझे जूते की जरूरत नहीं, पर रात को अंधेरे या बरसात में काम के समय पहन लिया करूंगा।"

एक बार उसने मुलायम कार्ड-बोर्ड के कुछ रद्दी टुकड़ों को सींकर एक जोड़ा जूता तैयार कर लिया था। पर कागज का जूता भी एक दिन से अधिक चल सकता है? इसलिए उसने गांधीजी से कहा, "किसी का फटा-पुराना फालतू जोड़ा पड़ा हो तो वह मुझे दिला दीजिये।"

गांधीजी ने पूछा, "फटा हुआ जोड़ा क्यों?"

बुड्ढे ने जवाब दिया, "बचा-खुचा अन्न खाकर और फटा-पुराना जोड़ा पहनकर गुजर करना ही अच्छा है।"

गांधीजी ने कहा, "पर मैं तुम्हारे लिए नया जोड़ा बनवा दूं तो?"

वह बोला, "तो यह आपकी कृपा होगी। पर मुझे ये नये जमाने की चप्पल या स्लीपर पसन्द नहीं। मुझे तो पुराने ढंग का अपना वही ओखाई जोड़ा चाहिए।"

गांधीजी ने कहा, "ठीक है, तुम्हारे लिए अपने चर्मालय से हम वैसा जोड़ा तैयार करा सकते हैं।"

तब उसने कहा, "पर बिना देखे ओखाई जोड़ा मोची कैसे बना सकेगा? बिना नालवाड़ी गये मैं मोची को कैसे समझा सकता हूं? पर मैं एक दिन का भी काम कैसे छोड़ूं? और बिना गये काम बनेगा नहीं।"

गांधीजी बोले, "तुम्हें अपना काम छोड़कर जाने की

जरूरत नहीं और न मोची को ही यहां बुलाने की जरूरत है। लाओ, मुझे कार्ड-बोर्ड का टुकड़ा दो। मैं इसका ओखाई जोड़े का नमूना बना दूंगा और इस नमूने के अनुसार जोड़ा बना देने के लिए मोची को कहला दूंगा।''

यह कहकर गांधीजी ने कुछ ही देर में कार्ड-बोर्ड का 'ओखाई' जोड़ा बना दिया। तीस वर्ष पहले उन्होंने यह जोड़ा देखा था, पर उसकी बनावट याद करके उन्होंने उस जोड़े का नमूना तैयार कर दिया। ओखाई का वह हू-ब-हू नमूना देखकर सब लोग अचरज में पड़ गये।

: ५६ :

उसे अस्पताल ले जाने की जरूरत नहीं

उन दिनों (अक्तूबर, १९३५) मीराबहन का अधिकतर समय गांव में बीमारों को उनके झोंपड़ों में जाकर देखने-भालने में बीतता था। गांधीजी के आदेशानुसार अधिकांश रोगियों को देसी दवाइयों के नुस्खे बतलाने में ही वह व्यस्त रहती थीं। कुछ लोगों को, जिन्हें विशेष डाक्टरी परीक्षा और इलाज की आवश्यकता होती, उन्हें वह सिविल अस्पताल भिजवा देतीं। उनके रोगियों में पशु भी शामिल थे। वह अपने काम में इतना अधिक तल्लीन रहतीं कि पूछिए नहीं। बात भी करतीं तो केवल अपने रोगियों के संबंध में ही। एक दिन गांधीजी से आकर बोलीं, "बापूजी, वहां एक गाय की टांग टूट गई है। वह अच्छी दुधारू

गाय है। अगर ठीक-ठीक इलाज न हुआ तो उसका सारा दूध छनक जायगा। मैंने डाक्टर को कहला भेजा था, पर उसका यह कहना है कि गाय को पशुओं के अस्पाल में भेजना चाहिए। वहीं उसका ठीक-ठीक इलाज हो सकेगा। अब हम किस तरह उस अपंग गाय को गाड़ी में उठाकर लादें और वहां तक ले जायं ? ऐसे करने से तो उसे बहुत अधिक कष्ट होगा।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "उसे अस्पताल ले जाने की जरूरत नहीं है। अपनी घोड़ी पर सवार होकर तुम तुरन्त चली जाओ और डाक्टर को सारी स्थिति समझा दो। उससे कहो कि वह स्वयं गांव में जाकर गाय का इलाज करे। यह उसका कर्त्तव्य है। उसे उठाने-धरने में जो कष्ट होगा, वह तो है ही, इसके अलावा अस्पताल तक अपनी गाय ले जाने के लिए गाड़ी का किराया देना एक गरीब आदमी को पुसा भी तो नहीं सकता।"

मीराबहन ने कहा, "हां, सो तो मैं समझती हूं। अभी थोड़े दिन की बात है कि एक गरीब स्त्री के बच्चा हुआ था। पौष्टिक भोजन न मिलने से उस बेचारी के शरीर में खून की कमी हो गई।"

गांधीजी ने उसे गोलियां देते हुए कहा, "तुम उसे ये गोलियां दे देना और एक हफ्ते में बतलाना कि उसकी तबीयत कैसी है ?"

मीराबहन बोलीं, "और उस लड़के का क्या किया जाय ? उसके फोड़ों पर मक्खियां बैठ-बैठकर उसे तंग करती हैं।"

गांधीजी ने कहा, "नीम के गर्म पानी से फोड़ों को धोकर बोरिक का मरहम लगा देना और पट्टी बांध देना।"

उस लड़के का क्या हुआ ?

सुदूर दक्षिण भारत से एक हरिजन लड़का प्रशिक्षण के लिए सेवाग्राम आनेवाला था। एक मित्र ने उसके आने की सूचना देते हुए यह आशा प्रकट की थी कि कोई-न-कोई व्यक्ति उसे स्टेशन पर मिल जायगा। महादेव देसाई ने इस बात को नोट कर लिया था, लेकिन फिर भी वह किसीसे स्टेशन जाने के लिए कहना भूल गये। साधारणत: उनको स्वयं ही स्टेशन जाना चाहिए था, लेकिन अनेक चिन्ताओं में घिरे रहने के कारण वह कुछ भी नहीं कर सके। उस दिन गांधीजी के खून का दबाव अपनी चरम सीमा तक पहुंच गया था। दूसरे दिन डाक्टरों की सलाह के अनुसार वह मौन धारण किए हुए थे। बहुत देर तक महादेवभाई इधर-उधर के कामों में लगे रहे, लेकिन जैसे ही वह गांधीजी के पास पहुंचे, उन्होंनें लिखकर पूछा, "उस लड़के का क्या हुआ ? कोई उसे स्टेशन पर लेने के लिए गया था ?"

यह सुनकर महादेवभाई बहुत लज्जित हुए। जवाब देते नहीं बना। उन्होंने तुरन्त इसका पता लगाया कि वह आया है या नहीं। वह आ चुका था। अपनी मातृभाषा में बात करनेवाला एक साथी भी उसने ढूंढ़ निकाला था और भोजन करले के बाद अबतक वह आश्रम का एक सदस्य बन चुका था। गांधीजी ने उसे बुला भेजा और लिखा, "उससे पूछो कि वह यहां कब आया ?"

लड़के ने सहज भाव से जवाब दिया, "आज सवेरे।"

गांधीजी ने लिखा, "उससे पूछो कि वह किस वक्त यहां आया ?"

लड़के ने उसी सहज भाव से उत्तर दिया, "आज सवेरे।"

गांधीजी ने पूछा, "सवेरे कितने बजे ? यहां आने में कितना समय लगा और किसने यहां का रास्ता बताया ?"

लड़के ने उत्तर दिया, "मैं स्टेशन से सीधा यहीं आया हूं।"

गांधीजी ने पूछा, "जगह का पता लगाने में कोई दिक्कत तो नहीं हुई।"

लड़के ने उत्तर दिया, "नहीं, किसीने मुझे रास्ता बता दिया था।"

गांधीजी ने फिर लिखा, "जिस आदमी ने तुमको यहां का पता बताया है, उससे तुमने बातचीत कैसे की ? क्या तुम हिन्दी जानते हो ?"

लड़के ने उत्तर दिया, "हां, कुछ थोड़ी-सी।"

गांधीजी ने लिखा, "उससे पूछो कि वह कोई पत्र लाया है या नहीं ?"

तब लड़के ने अपने साथ लाया हुआ पत्र, फल और शहद गांधीजी को दिये। उन्होंने लिखा, "अब इसे...के पास ले जाओ और उनसे कहो कि इससे मित्रता करें। इसकी जो कुछ जरूरत हो उसकी पूर्ति करें।"

उसके बाद गांधीजी खामोश हो गये। लेकिन वह ऐसी खामोशी थी कि महादेवभाई के प्राण सूख गये। बोलने से शायद

उतने न सूखते। उनकी लापरवाही से गांधीजी को बहुत चोट पहुंची थी। श्रीमती सेंगर या सरदार पटेल जैसे व्यक्तियों की बनिस्बत उस हरिजन लड़के के लिए स्टेशन जाने की कहीं अधिक आवश्यकता थी। वह बालक ही था। तेलुगु भाषा के अलावा और कोई भाषा वह नहीं जानता था। अपने स्थान से कभी बाहर भी नहीं गया था। इसीलिए महादेवभाई को लगा कि इस घटना के कारण गांधीजी के खून का दबाव अवश्य ही थोड़ा-बहुत बढ़ गया होगा।

: ५८ :

बोतल से रोटी अच्छी बेली जा सकती है

यरवदा जेल में महादेव देसाई गांधीजी के साथ ही थे। एक बार उन्हें रोटी बेलने के लिए बेलन की आवश्यकता हुई। जब तीन-चार बार कहने पर भी बेलन नहीं आया तब वार्डर ने कहा, "आज तो बोतल से रोटी बेल लीजिये। कल तक बेलन जरूर आ जायगा।"

वल्लभभाई बोले, "यहां ऐसे लोग भी मौजूद हैं, जो बोतल से रोटी बेलते हैं।"

गांधीजी ने कहा, "सचमुच वल्लभभाई, बोतल से रोटी अच्छी बेली जाती है।"

गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में यह प्रयोग कर चुके थे। चर्चा

चलने पर महादेवभाई ने पूछा, "जब आप फिनिक्स आश्रम में रहने के लिए गये थे तब रसोइया तो था न ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "नहीं, उससे पहले ही छुड़ा दिया था। एक ब्राह्मण रसोइया हमारे पास था। वह बहुत अच्छा था। उसके बाद दूसरा आया। वह बहुत जिद्दी था। बोला, 'भाई-साहब, अगर आप मिर्च वगैरा इस्तेमाल नहीं करने देंगे तो काम नहीं चलेगा।' इसपर मैंने कह दिया तुम भले ही चले जाओ। तब से रसोइये के बिना काम चलाने लगा। खाना बनाना, कपड़े धोना, पाखाने साफ करना और पीसना, ये सब काम घर में अपने हाथ से ही कर लेते थे। पीसने के लिए छ: पौण्ड के मूल्य की लोहे की चक्की थी। एक आदमी से तो वह चलती भी नहीं थी। हां, दो मजे में पीस लेते थे। सुबह-सुबह उठकर मेरा यही पहला काम होता था, जिसे चाहता उसे अपने साथ ले लेता। खड़े-खड़े पीसना पड़ता था। हत्था घुमाने के लिए भी दो आदमी लगते थे। पन्द्रह मिनट में सारे घर का आटा पिस जाता था। जैसा चाहे वैसा, मोटा या महीन।"

: ५९ :

श्रद्धा बड़ी चीज है

यरवदा जेल में गांधीजी मगन चर्खा चलाने का प्रयोग कर रहे थे। चलाते-चलाते उस पर दायां हाथ बैठ गया तो वह उत्साह में आ गये, लेकिन दूसरे दिन वह चर्खा किसी भी तरह नहीं चला।

नौ-दस बजे तक चलाया, परन्तु पूनियां बिगड़ने के सिवा कोई परिणाम नहीं निकला। दोपहर को भी ऐसा ही हुआ। चर्खे के जोत कसे, तेल दिया, सब उपाय किये, परन्तु व्यर्थ। वल्लभभाई पटेल सो कर उठे तो कहने लगे, "बहुत कात लिया, अब बन्द कीजिये।"

गांधीजी बोले, "हां, काता-काता, हमारा संघ रुक जानेवाला नहीं है।"

वल्लभभाई ने कहा, "नीचे बहुत-सा काता हुआ पड़ा दीखता है।"

लेकिन शाम होते-न-होते वल्लभभाई भी और विनोद नहीं कर सके। गांधीजी ने बाएं हाथ से शुरू किया। पांच घंटे मेहनत की होगी। शाम को बिलकुल थक गये थे, तुरन्त सोने चले गये। जाते-जाते वल्लभभाई से बोले, "देखिए कल चर्खा जरूर चलेगा, श्रद्धा बड़ी चीज है।"

वल्लभभाई बोले, "इसमें भी श्रद्धा ?"

गांधीजी ने कहा, "हां-हां, श्रद्धा तो होनी ही चाहिए।"

और अगले दिन वह अधिक सफल हुए। तीन घंटे कातकर १३१ तार निकाले। वल्लभभाई से कहा, "देखिए, आज कैसा परिणाम आया है ?"

वल्लभभाई ने कहा, "हां, देख रहा हूं। नीचे काफी पड़ा है।"

गांधीजी बोले, "मगर यह सूत की फेनी बन्द हो जायगी तब तो कहेंगे कि अब ठीक है।"

तीसरे दिन कातते-कातते बोले, "यह एक बड़ी तालीम है।"

महादेवभाई ने उत्तर दिया, "यह कहने की जरूरत नहीं है। देख ही रहे हैं न।"

गांधीजी बोले, "नहीं, मैं इस अर्थ में नहीं कहता। ६३ वर्ष की उम्र में इतनी मेहनत कर रहा हूं, यह तुम्हें तालीम मालूम हो सकती है, मगर मैं कहता हूं कि इस उम्र में भी मुझे इसमें खूब रस आ रहा है। परिश्रम की लज्जत ही और है। मेहनत का मजा तो वह स्त्री जानती है, जिसके बच्चा होनेवाला हो।

: ६० :

सच्ची खूबी सीधा रखने में ही है

यरवदा जेल में गांधीजी एक पट्टे का तकिया लगाकर बैठते थे। इस पट्टे को वह अक्सर दीवार से सीधा लगाकर रखते थे। कोण बनाकर नहीं। महादेवभाई ने कहा, "बापू, यदि आप पट्टे को कोण बनाकर रखें तो वह गिरा न करे और जरा आराम भी मिले।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "आराम तो मिले, मगर सच्ची खूबी सीधा रखने में ही है। इससे कमर और रीढ़ सीधी रहती है, नहीं तो टेढ़ी हो जाय। यह नियम है कि किसी चीज को सीधी रखें तो उसके सहारे सभी चीजों को सीधा रहना पड़ेगा और यदि टेढ़ा रखा तो फिर कई दोष घुस आयंगे।"

कर्मचारी कैदियों की सेवा के लिए हैं

उस दिन गांधीजी से मिलने के लिए यरवदा जेल में कई व्यक्ति आये थे। उन्हींमें थे श्री जमनादास और श्री बेलवी। गांधीजी ने उनके साथ काफी विनोदभरी बातें कीं। इन लोगों को कर्मचारियों ने ऐसी पट्टी पढ़ा रखी थी कि कुछ पूछने की उनकी हिम्मत ही नहीं होती थी। गांधीजी ने उनपर दबाव डालकर पूछा, "क्या तुम्हें कोई शिकायत नहीं करनी है? नासिक में यहां से अच्छा हाल था या बुरा?" आदि-आदि।

इसका जवाब सुपरिन्टेन्डेन्ट ने ही दिया। बोला, "इनको एक शिकायत है और वह यह कि रविवार को इन लोगों को दो बजे बन्द कर दिया जाता है। वह इन्हें अनुकूल नहीं पड़ता। मेरी मुश्किल यह है कि कर्मचारियों को उस दिन देर तक ठह-रना पड़ता है।"

गांधीजी ने कहा, "यह तो कोई बचाव नहीं। कर्मचारी कैदियों के लिए हैं या कैदी कर्मचारियों के लिए?"

सुपरिन्टेन्डेन्ट को यह अच्छा नहीं लगा। बोले, "यह कैसे? कर्मचारी कैदियों के लिए कैसे? कर्मचारी तो कैदियों को जेल में रखते हैं।"

गांधीजी ने कहा, "तो क्या कर्मचारियों को कैदियों को सजा देने के लिए ही रखा है? सच पूछा जाय तो कर्मचारी कैदियों की सेवा के लिए ही हैं। उनकी तन्दुरुस्ती कायम रखना

और कानून के भीतर जितनी सुविधाएं दी जा सकती हैं वे उन्हें देने के लिए ही हैं ।"

सुपरिन्टेन्डेन्ट इस बात का क्या उत्तर दे सकते थे !

: ६२ :

मनुष्य कितना दुर्बल है

सन् १९३३ में गांधीजी जब यरवदा जेल में उपवास आरंभ करनेवाले थे तब राजाजी और शंकरलाल बैंकर ने सुझाव दिया था कि उपवास शुरू होने से पहले वह डाक्टर को शरीर की जांच कर लेने दें। गांधीजी ने कहा, "इस तरह मैं डाक्टर से जांच नहीं करवा सकता, क्योंकि यह तो मेरी अश्रद्धा की निशानी होगी।"

राजाजी बोले, "आप हमारी एक भी बात नहीं मानते हैं और दावा करते हैं कि आपसे भूल होती ही नहीं।"

यह सुनकर गांधीजी उबल पड़े और बोले, "मेरी श्रद्धा पर आप ऐसा प्रहार नहीं कर सकते। मुझे विश्वास है कि मैं उपवास से जीता उठूंगा। इतना आपके और मेरे लिए काफी होना चाहिए। मेरी श्रद्धा को कमजोर न करना, आपका मित्र धर्म है। उपवास शुरू करने से पहले मैं डाक्टर से जांच कराना मंजूर नहीं कर सकता।"

गांधीजी के मन को दुख पहुंचा, इस बात पर अफसोस करते हुए दोनों मित्र वहां से चले गये। शाम को घूमते हुए अचानक गांधीजी को लगा कि भूल उनकी थी। बोले, "उनके साथ मैंने

बड़ा अन्याय किया। मनुष्य कितना दुर्बल है, कितनी भूलें करता है। शुद्धि के लिए उपवास करने बैठा हूं तो भी मित्रों पर मैंने क्रोध किया। उनसे क्षमा मांगूंगा।"

सवेरा होते ही उन्होंने राजाजी के नाम पत्र लिखा, "आप मुझे प्राणों से भी ज्यादा प्रिय हैं। मैंने आपका और शंकरलाल का बहुत ही जी दुखाया। यह कहने की जरूरत नहीं कि आप मुझे क्षमा कर दीजिये, क्योंकि क्षमा तो आपने मुझे मांगने से पहले ही कर दिया है। पर मैंने कल बेवकूफी से जिस बात से इंकार किया था, वही बात अब करने को तैयार हूं। अभी या जब आपकी इच्छा हो, मैं किसी भी डाक्टर से जांच कराने को तैयार हूं। शर्त इतनी ही है कि सरकार की इजाजत मिलनी चाहिए। मेरे खयाल से इस जांच का परिणाम प्रकाशित नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह डर है कि उसका राजनैतिक उपयोग होगा। मुझे यह भी कहना चाहिए कि डाक्टर से जांच कराने से उपवास रुकेगा नहीं। मिलने पर और बातें करेंगे। यह तो उस मैल को निकाल डालने के लिए लिखा है, जो कल मेरे हृदय में घुस गया था।"

: ६३ :

यहां से तुम्हें मुफ्त आशीर्वाद नहीं मिलेगा

एक दिन सरोजिनी नायडू एक नव-दम्पत्ति को गांधीजी के पास लेकर आईं। वे गांधीजी का आशीर्वाद चाहते थे। उस

नवोढ़ा लड़की को गांधीजी 'तिलक स्वराज्य फण्ड' के जमाने से जानते थे। उसने उस समय बहुत-सा रुपया जमा किया था। अपने भी अधिकतर गहने दे दिये थे। गांधीजी बोले, "तुम्हें वे दिन याद हैं न? तुम्हारी शादी से मुझे खुशी हुई, पर यहां से तुम्हें मुफ्त आशीर्वाद नहीं मिलेगा। तुम्हें पहले हरिजनों को आशीर्वाद देना चाहिए।"

नवोढ़ा ने कहा, "किस तरह दूं! आपको चाहिए सो मांग लीजिये।"

गांधीजी बोले, "पर मैं कैसे मांगू? तुम्हें तो अपने पति की आज्ञा लेनी चाहिए। मुझे तुम दोनों के बीच झगड़ा नहीं कराना है।"

नवोढ़ा ने दृढ़तापूर्वक कहा, "हम दोनों के बीच में झगड़े की कोई गुंजाइश ही नहीं है।"

यह कहते हुए उसने अपनी सोने की चूड़ियां उतार कर गांधीजी के चरणों में रख दीं। उस समय सब खिलखिला कर हँस रहे थे।

: ६४ :

वधू कहां है?

एक बार गांधीजी पंडित जवाहरलाल नेहरू के साथ तीन दिन के लिए शान्तिनिकेतन गये। महाकवि रवीन्द्रनाथ और वहां के सभी प्राध्यापकों और विद्यार्थियों ने उनके स्वागत के लिए

जोरदार तैयारी की। उनके ठहरने के कमरे को बड़े कलात्मक ढंग से सजाया, ऐसा कि उसका सौन्दर्य देखनेवाले को मुग्ध कर देता था।

गांधीजी आये। साथ में थे जवाहरलाल, महादेव देसाई और खादी प्रतिष्ठान के सतीशबाबू। प्राचीन वैदिक पद्धति से सबका स्वागत हुआ। गुरुदेव ने स्वयं अपने हाथ से गांधीजी के भाल पर चंदन और कुंकुम का टीका लगाया और फिर ले चले सबको उनके आवास-स्थल की ओर। गांधीजी ने अपने कमरे की सजावट पर एक नजर डाली। बड़े जोर से हँसे। बोले, "यह सब क्या है? आखिर मुझे इस सुहाग कमरे में क्यों लाया गया?"

गुरुदेव भी कम विनोद-प्रिय नहीं थे। कहा, "आप यह न भूलें कि यह एक कवि का आवास है।"

गांधीजी ने पूछा, "अच्छा, तो फिर वधू कहां है?"

कवि बोले, "हमारे हृदयों की चिर युवती रानी शान्तिनिकेतन आपका स्वागत करती है।"

गांधीजी ने कहा, "सच मानो, वह इस खोखले मुंह के बूढ़े भिखारी को मुश्किल से ही दूसरी बार आंख उठा कर देखेगी।"

गुरुदेव बोले, "नहीं, सो नहीं होगा। हमारी रानी ने सदा सत्य को प्यार किया है और इन सारे लम्बे वर्षों में निर्विवाद रूप से उसीकी पूजा की है।"

गांधीजी बोले, "तब तो इस खोखले मुंह के बूढ़े आदमी के लिए भी यहां कुछ आशा है।"

काफी देर तक यह विनोद-वार्ता चलती रही। दूसरा दिन हुआ। गुरुदेव मेहमानों की सुख-सुविधा की देख-भाल करते हुए

मेहमान-घर में जा पहुंचे । देखते हैं, वे सब लोग तो कभी के उठ कर अपने काम में लग गये हैं। प्रार्थना हो चुकी है। सतीशबाबू लड़के-लड़कियों की एक टोली को हाथ के पींजन से कपास धुनना सिखा रहे हैं। पींजन का स्वर जैसे संगीत का स्वर हो। गुरुदेव को यह स्वर बहुत प्यारा लगा। लेकिन गांधीजी के कमरे में पहुंचकर वह चकित रह गये। कमरे का सारा शृंगार उतार दिया गया था। गांधीजी का पलंग खुली छत पर पड़ा हुआ था। चारों ओर फाइलें थीं, चर्खे थे। विनोद-प्रिय गुरुदेव बोले, "हरे राम, हरे राम! भला इस सुहाग के कमरे का क्या हुआ! देखता हूं कि दुलहिन जहां-की-तहां है, पर क्या दुलहा भाग गया है?"

गुरुदेव के स्वागत के लिए खड़े होते हुए गांधीजी खूब जोर से हँस पड़े। बोले, "मैं तो पहले ही चेतावनी दे चुका था कि दुलहिन बिना दांत के बूढ़े आदमी को गांठनेवाली नहीं है।"

: ६५ :

बड़ी दिखाई देनेवाली चीज़ मुझे बड़ी नहीं लगती

सन् १९३२ में गांधीजी जब यरवदा जेल में थे तब उन्होंने किसी सम्बन्ध में लार्ड सेंकी को खत लिखा था। कई दिनों बाद महादेवभाई ने गांधीजी से पूछा, "बापू, सेंकी के खत का जवाब अब आना चाहिए।"

गांधीजी बोले, "कौन-सा खत?"

महादेवभाई ने कहा, "वही जो आपने उस लेख के बारे में लिखा था।"

गांधीजी को अब भी कुछ याद नहीं आया। बोले, "उसे पत्र लिखा था ? कब ?"

वल्लभभाई ने कहा, "अरे, बापू, इस तरह भूलेंगे तो कैसे काम चलेगा ? अभी तो हमें स्वराज्य लेना है।"

महादेवभाई ने विस्तार से बताया, तब कहीं गांधीजी को याद आया। बोले, "अब कुछ धुंधला-धुंधला स्मरण होता है।"

गांधीजी की स्मृति बहुत तेज मानी जाती थी, लेकिन इस पत्र की बात वह भूल गये, यह बड़े आश्चर्य की बात थी। इसीलिए रात को सोते समय महादेवभाई ने पूछा, "बापू, आपको छोटी-छोटी बातें ऐसे याद रहती हैं कि मुझे अक्सर आश्चर्य होता है। तब इतनी बड़ी बात, जो पत्र आपने इतनी अधिक चर्चा और विचार के बाद लिखा था, आप कैसे भूल गये ? आज ही आपने कहा था कि दाऊद को लिखा हुआ पत्र फलां आदमी के हाथ रखा था। वह आपको याद रहे और इसे आप भूल जायं, इससे विस्मय होता है।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "मेरे बारे में ऐसा हुआ, इसका कारण यह है कि इन दोनों छोटे-छोटे पत्रों का मूल्य मेरे सामने अलग-अलग था! जिस बात में किसी मनुष्य का कल्याण समाया हुआ हो, उसे मैं कभी नहीं भूलता।"

महादेवभाई बोले, "हां, स्मृति की व्याख्या तो यही है न कि जिसे याद रखने की जरूरत हो, उसे याद रखना और बाकी को भूल जाने की शक्ति।"

गांधीजी ने कहा, "हां, सेंकी के खत को मैंने इतना महत्व दिया ही नहीं था। उसे लिखवाया और भूल गया। दाऊद का पत्र इसलिए याद रहा कि उसमें एक इंसान की गहरी भलाई की बात थी। सेंकी को लिखवाकर मैं भूल गया। सच बात यह है कि बड़ी दिखाई देनेवाली चीजें मुझे बड़ी नहीं लगतीं और छोटी चीजें मेरे लिए बड़ी बन जाती हैं। महाभारत से दिखाई देनेवाले काम मुझे कभी महाभारत लगे ही नहीं। चम्पारन से लगाकर आजतक के सब काम मैं ढूंढ़ने नहीं गया था। मगर ऐसा लगता है, मानो वे मेरी गोद में आ पड़े हों और इसी तरह चला जा रहा है। भगवान निभा रहा है।"

●

संदर्भ

इस पुस्तक के प्रसंग जिन पुस्तकों से सम्पादित रूप में लिये गए हैं, उनके नाम, प्रसंगों की संख्या तथा लेखकों के नाम साभार दिये जारहे हैं :

एकला चलो रे (मनुबहन गांधी) ४४

ऐसे थे बापू (आर० के० प्रभु) १०, ३०, ३८

किशोर, अप्रैल १९४८ (प्रभुदयाल अग्निहोत्री) १५

कुछ देखा, कुछ सुना (घनश्यामदास बिड़ला) ३६

गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव (संकलन) एडमण्ड प्रीवेट २८

गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव (संकलन) भागीरथ कानोड़िया १

गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव (संकलन) महावीर त्यागी ३५,

गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव (संकलन) मार्तण्ड उपाध्याय २७,

गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव (संकलन) श्रीप्रकाश ३४,

गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव (संकलन) श्रीमन्नारायण ३१

गांधी शताब्दी पारिजात स्मारिका (महेशप्रसाद सिंह) ५,

गांधीजी : एक झलक (श्रीपाद जोशी) २९

गांधीजी की देन (डा० राजेन्द्रप्रसाद) ४०, ४१

गांधीजी की साधना (रा० म० पटेल) २,

गांधीजी के जीवन-प्रसंग (सं० चंद्रशंकर शुक्ल) २१, ५१

गांधीजी के पावन प्रसंग (लल्लूभाई मकनजी) ६,

गांधीजी के सम्पर्क में (सं० चंद्रशंकर शुक्ल) ४५, ४६,

गृहणी, मार्च १९४८ (शांतिदेवी, शारदादेवी शर्मा) १३, १४,

जीवन प्रभात (प्रभुदास गांधी) ७,

दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह का इतिहास (गांधीजी) २०

बापू : मेरी मां (मनुबहन गांधी) २२, ५२,

इस माला की पुस्तकें

□

सस्ता साहित्य मंडल • श्री कृष्ण जन्म-स्थान सेवा-संस्थान • संयुक्त प्रकाशन

यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्य पर उपलब्ध किये गए कागज पर मुद्रित है.